हो न देना चाहिए। यदि वे एक बार पहुंच गए तो बिना उत्पात किये न रहेंगे। यही उत्तम है कि पहले ही से उनका मार्ग रोक दिया जाय।

इसके लिये केवल इतना ही आवश्यक है कि स्वच्छता का पूरा ध्यान रखा जाय। जो भी वस्तु योनि के पास पहुँचे उसका पहले ही पूरा निस्संक्रामण हो जाना आवश्यक है। इसी प्रकार दाइयों के हाथ भी भली भाँति साबुन से धुलवा-कर किसी निस्संक्रामक वस्तु द्रावण में कम से कम १० मिनट तक रखे रहने चाहिए। ऐसा करने से हाथ पूर्णतया स्वच्छ हो जायँगे। जो वस्त्र इत्यादि योनि के पास रखे जाँय उनके निस्संक्रामण में यदि किसी प्रकार का सन्देह हो तो उन्हें निस्संक्रामक के द्रावण में कुछ समय तक भिगो लेना चाहिए।

अस्पतालों में जहाँ यह विधि प्रचलित है वहाँ प्रसूति ज्वर के रोगी बहुत कम देखने में आते हैं। यह रोग मूर्ख दाइयों के गन्दे हाथों और उनकी घृणित विधियों का ही परिणाम है जिससे प्रति वर्ष हमारे देश में स्त्रियों की एक बहुत बड़ी संख्या अपने जीवन से हाथ धोती है। अतएव सब से उत्तम यह है कि इन अपढ़ दाइयों को घर में आने ही न दिया जाय। प्रसूति के समय पर केवल उन्हीं दाइयों को बुलवाना उचित है जिन्होंने किसी स्कूल में शिक्षा पाई हो अथवा किसी बड़े अस्पताल में रह कर काम सीखा हो।

प्रस्तावना

जाति की उन्नति उसके बच्चों पर निर्भर करती है। जो आज बच्चे हैं वेही कुछ समय के पश्चात बड़े होकर जाति के कार्यकर्त्ता होंगे। भिन्न भिन्न कार्य्य को भली भाँति संपादन करना भिन्न भिन्न व्यक्तियों का काम होगा। इन्हीं बच्चों में से कुछ देश की रक्षा करनेवाले योद्धा बनेंगे, कुछ यहाँ के राजकीय प्रबंध को अपने हाथ में लेंगे। समाज, शिक्षा विभाग, व्यापार इत्यादि की व्यवस्था को ठीक करनेवाले और कुरीतियों को दूर करके देश को उन्नति के मार्ग में प्रवृत्त करनेवाले लोग भी इन बच्चों ही में से निकलेंगे। देश की सारी भावी उन्नति के आधार देश के बच्चे ही होते हैं। इन कारणों से बच्चों की रक्षा करना और उनके जीवन को आदर्श बनाना जाति का मुख्य कार्य है।

जिस देश की जन-संख्या कम होती है वह शक्तिहीन होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जिस देश की जन-संख्या सब से अधिक हो वही सब से अधिक शक्तिशाली हो। हां यदि वह जाति उन्नति के साधनों का पूर्णतया उपयोग करे और उन्नति के शिखर पर पहुँचने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ले तो। वह दूसरी जाति से जिसकी जनसंख्या कम है

बहुत शीघ्र शक्तिशालिनी हो जायगी। युद्ध के समय में जन-संख्या की महत्ता का पता लगता है। यदि दो जातियाँ बराबर समुन्नत हैं, वैज्ञानिक उन्नति भी दोनों में बराबर है जैसा कि योरप के कई बड़े बड़े देशों में देखा जाता है, तो उनमें युद्ध होने पर उसी जाति की विजय होगी जो युद्ध में अधिक आदमी भेज सकेगी। जहाँ मनुष्यों की संख्या कम हो जायगी लड़ने के लिए सिपाही न होंगे वही देश पहले हारेगा।

युद्ध के पश्चात् देश में बहुधा ऐसा समय पहुँच जाता है जब कि मनुष्यों का बहुत अभाव हो जाता है। गत युद्ध से योरप के सब बड़े बड़े देशों में यही परिणाम हुआ है। मनुष्यों की बहुत कमी हो गई है। फ्रांस में एक समय ऐसा आ गया था जब वहाँ की सरकार को अधिक बच्चे उत्पन्न करने के लिये इनाम देने की घोषणा करनी पड़ी थी। सरकार ने सारे देश को सूचना दे दी थी कि जो मनुष्य एक विशेष संख्या से अधिक बच्चे उत्पन्न करेगा उसे प्रत्येक बच्चे के हिसाब से कुछ पारितोषिक मिलेगा।

देश की जनसंख्या की रक्षा करने का केवल एक ही उचित उपाय है। और वह यह है कि बालमृत्यु की संख्या को कम करने का पूर्णतया उद्योग किया जाय। अधिक बाल-मृत्यु से न केवल भावी उन्नति की आशा ही कम होती है किन्तु यह इस बात की सूचना है कि देश में दरिद्रता कितनी अधिक है। उससे यह विदित होता है कि सारे देश में बिमा-

रियाँ फैली हुई हैं, वहाँ के रहनेवाले स्वास्थ्य रक्षा के नियमों से अनभिज्ञ हैं, स्वच्छता की ओर उनका कुछ ध्यान नहीं है और न वे बच्चों का पालन पोषण करना ही जानते हैं। बालकों की अधिक मृत्यु संख्या से न केवल यही मालूम होता है कि इतने बच्चे काल के ग्रास बने किन्तु वह यह भी बतलाती है कि बच्चों की एक बहुत बड़ी संख्या रोगग्रस्त हो रही है।

बालमृत्यु शब्द का अर्थ

साधारणतः 'बाल-मृत्यु संख्या' शब्द से उत्पन्न हुए प्रत्येक एक सहस्र बच्चों में से मरे हुए बच्चों की संख्या समझी जाती है। यदि हम किसी स्थान की मृत्यु संख्या १२५ कहें तो उसका यह अर्थ है कि वहाँ प्रत्येक एक सहस्र उत्पन्न हुए बच्चों में से १२५ बच्चे मर जाते हैं। बच्चे की आयु साधारणतः १ मास से १२ मास तक की मानी जाती है। अतएव इस संख्या से यही समझना चाहिये कि मृत बच्चों की आयु १२ मास से कम थी।

सब से अधिक बच्चे जन्म के पश्चात् पहले महीने में मरते हैं। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि यदि १२ मास तक बच्चे इसी संख्या में मरते रहें, अर्थात् प्रथम मास की आयु में जितने बच्चों की मृत्यु होती है उतनी ही अन्य मास में भी हो, तो कदाचित् कोई भी बच्चा अपने जीवन का प्रथम मास समाप्त न कर सके।

बच्चे को अपने जीवन के प्रथम सप्ताह में बहुत सी हानिकारक दशाओं से युद्ध करना पड़ता है। बहुत बार बच्चा मृतक अवस्था में उत्पन्न होता है। जन्म से पूर्व उसको अपना भोजन नहीं पचाना होता किन्तु जन्म लेने के पश्चात् यह कार्य उसे स्वयं ही करना पड़ता है। सारे शरीर को नवीन अवस्थाओं के अनुकूल होना पड़ता है। जो बच्चे दुर्बल होते हैं वे इन सब बातों को सहन नहीं कर सकते। स्वाभावतः इस अवस्था में सहन शक्ति कम होती है। इस समय शरीर में वृद्धि बहुत शीघ्रता से होती है पाँच महीने में बच्चे का शरीर भार प्रायः दुगना हो जाता है। प्रथम वर्ष समाप्त करते समय तक शरीर भार इसका ड्योढ़ा हो जाता है। इसी कारण से बच्चे के शरीर पर प्रत्येक बात का प्रभाव बहुत जल्दी पड़ता है। तनिक सा भी स्वास्थ्य खराब होने पर उनका शरीर दुर्बल हो जाता है। अतएव उनके पालन पोषण में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। उनके भोजन में तनिक सी भी खराबी होने से वे रोगी हो जाते हैं। बच्चों के स्वास्थ्य के ठीक न होने से उन्हें ठंढ बहुत जल्द सताती है। प्रथम वर्ष के पश्चात् उनके शरीर में सहन-शक्ति बढ़ जाती है। इससे मृत्यु की संख्या भी घट जाती है।

प्रथम वर्ष में अधिक बच्चों की मृत्यु का कारण

हमारे देश में बाल-मृत्यु-संख्या बहुत अधिक है। नीचे

लिखे अंकों से इसका पता लग जायगा कि हिंदुस्थान में जीवन का कितना नाश होता है—

प्रान्त		पिछले दस वर्ष का औसत (१९१८ के अतिरिक्त)		१९१८	
		पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
हिन्दुस्थान	...	२११	१९९	२७४	२६०
आसाम	...	२१०	१८९	२२६	२०७
बंगाल	...	२१४	२००	२३५	२२०
बिहार व उड़ीसा	...	१८९	१७७	२३८	२२५
बम्बई	..	२००	१८६	२९३	२८०
बर्मा — उत्तर	...	२५४	२२१	३२१	२९०
बर्मा — दक्षिणी	...	२१५	१९२	२५७	२३७
सी० पी० बरार	...	२७४	२४३	४१९	३७६
मद्रास	...	१९४	१७७	२३७	२२२
नार्थ वेस्ट फ्रांटियर	...	१७८	१७४	२४३	२२४
पंजाब	...	२०३	२०२	२६१	२६४
संयुक्त-प्रान्त	...	२२८	२१९	३०८	२९८

भिन्न भिन्न प्रांत और नगरों में संख्या भी भिन्न हैं। साधारणतः जिन प्रान्तों में उत्पत्ति अधिक है वहाँ मृत्यु-संख्या भी अधिक है। मद्रास प्रान्त में मृत्युसंख्या कम है किन्तु वहाँ उत्पत्ति भी कम होती है। यह न केवल प्रान्तों ही तक के लिये है, किन्तु परिवारों तक के लिये भी है। यह

देखा जाता है कि जिस परिवार में अधिक बच्चे उत्पन्न होते हैं वहां मृत्यु भी अधिक होती है। यह हमारे देश के लिये अन्य देशों से अधिक ठीक है। जिस परिवार में अधिक कुटुम्बी होते हैं वहां स्त्रियों को काम भी अधिक करना होता है। इससे माताओं को बच्चों की ठीक प्रकार से देख रेख करने का समय नहीं मिलता। न बच्चों पर उतना खर्च ही किया जा सकता है जितना कि एक छोटे परिवारवाला कर सकता है।

नगरों की बालमृत्यु

वंबई	...	...	५५६
कलकत्ता	...	...	३८६
रंगून	...	...	३०३
मद्रास	...	...	२८२
करांची	...	...	२४६
देहली	...	...	२३३

इन अंकों की दूसरे देशों के बाल-मृत्यु-संख्या से यदि तुलना की जाय तो बहुत अंतर मालूम होगा।

हंगरी—Hungry	...	...	२०४
जमैका—Jamaica	...	...	१६१
लंका—Ceylon	...	...	१८६
प्रशिया—Prussia	...	...	१६८
जापान—Japan	...	...	१५६

सर्विया—Servia १५४
इटली—Italy १५३
वेलजियम—Belgium १७१
फ्रांस—France १२६
अमेरिका—United States १२४
इंग्लैंड व वेल्स—England & Wales ... ११७
स्विजरलैंड—Switzerland ११५
हॉलैंड—Holland ११४
डेनमार्क—Denmark १०८
स्काटलैंड—Scotland ११२
आयरलैंड—Ireland ९४
स्वीडेन—Sweden ७८
आस्ट्रेलिया—Australia ६८
नार्वे—Norway ७०
न्यूजीलैंड—New Zeeland ७०

ये अंक हिंदुस्थान की १९२१ की सेनसस रिपोर्ट से लिए गए हैं। संभव है सन् १९२४ में, जब यह रिपोर्ट प्रकाशित की गई है इंग्लैंड तथा वेल्स की बाल-मृत्यु-संख्या कुछ बढ़ गई हो। निम्नलिखित अंकों से गत बीस वर्ष की मृत्यु संख्या मालूम होगी।

१९००—१५४
१९०१—१५१
१९०२—१३३
१९०३—१३२

१६०४—१४५	१६१२— ६५
१६०५—१२८	१६१३—१०८
१६०६—१३३	१६१४—१०५
१६०७—११८	१६१५—११०
१६०८—१२१	१६१६— ६१
१६०६—१०६	१६१७— ६६
१६१०—१०५	१६१८— ६७
१६११—१३०	१६१६— ८६
	१६२०— ८०

इन अंकों से यह मालूम होता है कि हमारे देश में उत्पन्न हुए प्रत्येक पाँच बच्चों में से एक तो अवश्य ही मरता है। बंबई ऐसे नगरों में यदि दो बच्चे उत्पन्न होते हैं तो उनमें से एक मर जाता है। जहां दूसरे देशों में १०० में से ८ या ७ मरते हैं, वहां हमारे देश में १०० में से २० से भी अधिक बच्चे मृत्यु के ग्रास बनते हैं। जहां इतने अधिक बच्चे मरते हों वह देश सभ्य देशों की गिनती में नहीं रखा जा सकता।

बाल-मृत्यु के कारण

बाल-मृत्यु के बहुत से कारण हमारे देश में भी वेही है जो अन्य देशों में हैं, जैसे ग़रीबी, गन्दगी, रहने के स्थान की गन्दगी, थोड़े से स्थान में बहुत से परिवारों का रहना इत्यादि। किन्तु इन सब के साथ हमारे देश में कुछ विशेष कुरीतियां प्रचलित हैं जिनका बच्चों के स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

वाल विवाह इनमें से मुख्य है। निम्नलिखित अंकों से मालूम होगा कि हमारे देश में कितनी छोटी आयु पर विवाह कर लिए जाते हैं—

—बाल विवाह

आयु		पुरुष		स्त्री
०—५	...	६	..	११
५–१०	...	२२	...	८८
१०–१५	...	११६	...	३८२
१५–२०	...	२१८	...	७७१
२०–२५	...	५६४	...	८७७
२५–३०	...	७५२	...	८६३

प्रति एक सहस्र कन्याओं में ११ ऐसी हैं जिनका विवाह १ मास से ५ वर्ष तक की आयु में कर दिया जाता है। बालकों की संख्या कम है। एक सहस्र में केवल ६ है। ५ से १० वर्ष की विवाहित कन्याओं की संख्या ८८ है और लड़कों की संख्या २२ है। १० से १५ वर्ष की आयुवाली कन्याएं एक सहस्र में ३८१ विवाहित हो चुकी हैं। इसी प्रकार १५ से २० वर्ष वाली विवाहित कन्याओं की संख्या ७७१ है।

इन अंकों से यह पता लगता है कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का विवाह जल्दी किया जाता है। जहां १५-२० वर्ष वाली विवाहित लड़कियों की संख्या प्रति सहस्र ७७१ है वहां केवल २६२ लड़कों का विवाह हुआ है। २० से २५ वर्ष की

आयु में यह अंतर कम हो जाता है। ज्यों ज्यों आयु अधिक होती जाती है त्यों त्यों यह अंतर भी कम होता जाता है।

इस छोटी आयु में विवाह करने का परिणाम बहुत बुरा होता है। लड़के लड़कियाँ उस जिम्मेदारी को जो विवाह से उन पर आ जाती है नहीं समझते। वह विवाह को साधारण सी दिन रात की एक घटना समझते हैं जिससे उनको तो वैसा ही आनन्द होता है जैसा बच्चों को नवीन वस्त्र गहने इत्यादि मिलने से होता है। जो दूसरे संबंधी होते हैं उसका भी एक तमाशे के समान आनन्द होता है। माता पिता अपना कर्त्तव्य समझ कर उसे पूरा करते हैं।

विवाह करते समय यह देखना बहुत आवश्यक है कि स्त्री और पुरुष दोनों विवाह के कर्त्तव्य को पूरा करने के योग्य हैं। वे अपनी जिम्मेदारियों को पूरी तरह समझते हैं। हमारे देश में इस बात का तनिक भी विचार नहीं रखा जाता। चाहे लड़का अपने बुरे चाल चलन से उन रोगों से ग्रस्त हो जिन्होंने उसे विवाहित जीवन के कर्त्तव्य को पूरा करने के पूर्णतया अयोग्य बना दिया हो तो भी मां, बाप अपना यह कर्त्तव्य समझते हैं कि लड़के के दुर्गुणों को जहां तक हो सके छिपा कर उसका विवाह कर दिया जाय। सिफिलिस (Syphilis) रोग के प्रभावों को कौन नहीं जानता। उपदंश भी इसी प्रकार का रोग है। कितनी निर्दोष पतिपरायणा सती स्त्रियां अपने रोगग्रस्त स्वामियों के पाप

के फलों को नहीं भोगती। स्वामियों के दुराचरणों से बहुधा वे अपने जीवन के सुख से वंचित हो जाती हैं। इन रोगों का प्रभाव न केवल पुरुष से स्त्री या स्त्री से पुरुष पर ही पड़ता है, किन्तु सारी सन्तान उस रोग के प्रभावों से मुक्त नहीं होती।

जब छोटी आयु में विवाह होता है तो सन्तान भी शीघ्र ही उत्पन्न होती है। छोटी आयु में उत्पन्न हुई सन्तान सदा दुर्बल होती है। उसमें सहन शक्ति बहुत कम होती है। इससे बहुधा ऐसे बच्चों की मृत्यु भी शीघ्र हो जाती है। छोटी आयु की माताएँ कभी मज़बूत बच्चे नहीं उत्पन्न कर सकतीं। बच्चे उत्पन्न करने के पूर्व यह आवश्यकता है कि वे उस अवस्था पर पहुँच जाय जब कि प्रकृति उन्हें माता बनने का भार उठाने के योग्य बना देती है। उस समय वे अपनी जिम्मेदारियाँ भी समझने लगती हैं और उसके लिये पहले से तैयार रहती हैं।

हमारे देश में बच्चे के उत्पन्न होने के समय सारा काम साधारण दाइयों द्वारा ही होता है। ये दाइयाँ बिलकुल अपढ़ और मूर्ख होती हैं जिनको स्वच्छता का तनिक भी ज्ञान नहीं होता। पहले तो जो कमरा प्रसव के लिये चुना जाता है वह ही ऐसा होता है कि वहां कठिनता से वायु का प्रवेश हो सकता है। तिस पर भी कमरों के द्वार पर एक परदा लटका दिया जाता है जिसके आगे एक अँगीठी पर

गंधक या धूप जलती रहती है। जच्चा को अपने सब नित्य-कर्म इत्यादि वहीं करने होते हैं। सारांश यह कि प्रसव का कमरा पूरा गन्दगी का भांडार होता है।

२—प्रसव की रीति

जब बच्चा उत्पन्न होता है तब स्त्री का गर्भाशय एक खुला हुआ घाव होता है। यदि घाव पर तनिक सी भी गन्दगी पहुँच जाय तो उसकी दशा बिगड़ जाती है। उसमें पीप पड़ जाती है, सूजन अधिक हो जाती है और रोगी को ज्वर आने लगता है। प्रसव के समय गर्भाशय की भी ठीक ऐसी ही दशा होती है। तनिक सी भी गन्दगी पहुँचने से उसमें सूजन पैदा हो जाती है जिससे जच्चा की दशा खराब हो जाती है। हमारे देश में प्रसवकाल में जितनी स्त्रियों की मृत्यु होती है उनमें से ९९ फी मृत्यु का यह कारण होता है कि दाइयों के गंदे गंदे हाथों द्वारा गर्भाशय में संक्रामक जीवाणु (Infecting Organisms) पहुँच जाते हैं और वहां पहुँच कर सूजन पैदा कर देते हैं जिससे स्त्री को ज्वर आने लगता है और योनि से दूषित दुर्गंधित प्रवाह होने लगता है।

जब एक बार यह दशा उत्पन्न हो जाती है तब उसे ठीक करना बहुत कठिन हो जाता है। इसीलिये इतनी अधिक स्त्रियाँ इस रोग का ग्रास बनती हैं। इसका सब से उत्तम उपाय यही है कि रोग को पास ही न आने दिया जाय। रोग के जीवाणुओं को मर्म स्थान तक पहुँचने का अवसर

किसी डाक्टर की सलाह से ऐसी ही शिक्षित दाई का पहले ही से प्रबंध कर लेना चाहिए। इस दाई का काम डाक्टर की देख रेख में उस ही की आज्ञा के अनुसार होना चाहिए। ऐसा होने से दाई को असावधानी करने का कोई अवसर न रह जायगा।

२. कंगाली

कंगाली सहस्रों रोगों की जड़ है। इस व्याधि से संसार भर की अन्य सब व्याधियाँ व्याप जाती हैं। निर्धन जन उत्तम भोजन, वस्त्र और निवासस्थान प्राप्त नहीं कर सकते। इससे उनके शरीर की दशा बहुत ही शोचनीय होती है। माता और पिता की शारीरिक दशा का बच्चे पर अवश्य ही प्रभाव पड़ता है और विशेष कर यदि गर्भ के समय में स्त्री का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता तो उस समय यह असंभव है कि बच्चे पर उसका प्रभाव न पड़े। इसी कारण उत्तम आर्थिक अवस्थावालों के बच्चों की कम मृत्यु होती है। उनका शरीर भी दृढ़ और बलवान् होता है। निर्धन लोगों के बच्चे बहुत दुबले पतले और कमजोर होते हैं।

कंगाली बाल-मृत्यु की संख्या के बढ़ने का सब से बड़ा कारण है। दूसरे सब कारण इसके सामने तुच्छ मालूम होते हैं। जिस प्रकार वृक्ष के तने से बहुत सी शाखाएँ फूटती हैं उसी प्रकार दूसरे कारण इस तने की शाखाएँ हैं। निर्धनता के कारण उत्तम भोजन, उचित देख रेख, वस्त्र, निवास, औषधि आदि का प्रबंध इत्यादि दुर्लभ हो जाता है। ज्यों ज्यों इस

विषय का पूरा अनुसंधान किया गया त्यों त्यों यही निश्चय मालूम होता है कि बाल-मृत्यु का मूल कारण कंगाली है।

धनवानों के बच्चों को यदि किसी प्रकार का कष्ट होता है तो उनको तुरंत ही एक उत्तम डाक्टर आन कर देखता है और अधिक से अधिक मूल्य की औषधि उनके प्रयोग के लिये लाई जाती है, किन्तु निर्धन लोगों के बच्चे बीमार पड़ने पर भी किसी प्रकार की उत्तम सहायता नहीं पा सकते। उनके पास इतना धन नहीं है कि वे एक डाक्टर को बुला कर उसकी फीस दे सकें और औषधि को खरीद सकें। वह इधर उधर के लोगों ने जो बताया वही दवा देते हैं जिससे लाभ के स्थान में बहुधा हानि हो जाती है। आवश्यकता पड़ने पर धाय का प्रबंध करना उनके लिये असंभव है। हां वे लोग किसी अच्छे अस्पताल में अवश्य जा सकते हैं। किंतु अस्पताल में चिकित्सा होना और घर पर उत्तम चिकित्सा के प्रबंध होने में बड़ा अंतर है। निर्धन गृह में स्वच्छता का रहना भी बहुत कठिन है।

बच्चों को शुद्ध उत्तम दूध की बहुत आवश्यकता रहती है। उनका स्वास्थ्य दूध पर बहुत कुछ निर्भर करता है। किंतु ग़रीब बच्चों के लिये दूध दुर्लभ है। हां गाँवों में तो अवश्य बच्चों को दूध मिलना कठिन नहीं होता क्योंकि वहां प्रत्येक मनुष्य के एक या दो गाय भैंस अवश्य होती हैं किन्तु नगरों में तो दूध का स्वप्न करना भी उनके लिये दुस्तर है। तब वे

बच्चे हृष्ट पुष्ट कैसे हो सकते हैं। और कैसे रोगों को निवार
करने में समर्थ हो सकते हैं। यही कारण है कि तनिक सा ...
रोग होने पर वे उसके ग्रास बन जाते हैं।

जर्मनी के एर्फर्ट (Erfert) नगर में डाक्टर रूल्फ ने
इसका अनुसंधान किया था। उन्होंने यह परिणाम
निकाला कि—

मजदूरों में १००० बच्चों में से ५०५ एक वर्ष के समाप्त होने
से पूर्व मरे। मध्यम श्रेणी में एक सहस्र में १७२ मरे और सब
से ऊँची धनवान् श्रेणी में केवल ८६ मरे। इन अंकों के अनु-
सार मध्यम और उत्तम श्रेणी में और मजदूरों में बहुत बड़ा
अन्तर है। धनवान लोगों की अपेक्षा मजदूरों में लगभग छः
गुना बच्चे मरते हैं। डाक्टर राबर्टसन ने इंग्लैंड में बरमिं-
घाम नामक नगर में इसी बात के अंकों को एकत्र किया था।
उनसे भी यही परिणाम निकलता है। धनवान श्रेणी में १०००
में केवल ५० की मृत्यु हुई किन्तु गरीब लोगों में एक सहस्र
में २०० मरे।

गरीबी के कारण बहुधा गर्भवती स्त्रियों को शारीरिक काम
करना पड़ता है। उसका यही कारण होता है कि परिवार
की इतनी आय नहीं होती कि उससे घर का ख़र्च चल सके।
इसी आय की कमी को पूरा करने के लिए स्त्रियाँ काम करती
हैं। बहुधा गर्भ के दिनों में भी, कभी कभी प्रसवकाल के
दिन तक वे बराबर काम किया करती हैं। इसका बच्चे पर

बुरा असर पड़ता है। बच्चा कमज़ोर हो जाता है। कभी कभी अधिक परिश्रम करने से बच्चे की स्थिति बिगड़ जाती है और उसका बाहर आना कठिन हो जाता है। प्रसवकाल के कुछ समय पूर्व से स्त्री को विश्राम करना बहुत आवश्यक है।

इसी प्रकार बहुधा माता को छोटे से बच्चे को घर पर छोड़ कर काम करने जाना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे को दूध छुड़ाना पड़ता है। इससे बच्चे के शारीरिक बल का ह्रास होता है। गौ इत्यादि का दूध जो उसे मिलता है, उसके द्वारा बच्चे को नाना प्रकार के रोग होने का भय रहता है। इसके अतिरिक्त माता की अनुपस्थिति के समय में जो बच्चे की देख रेख करता है वह इस काम को स्वयं माता की भाँति नहीं कर सकता। किन्तु साथ में यह प्रश्न है कि यदि माता काम करने नहीं जाती तो परिवार और साथ ही स्वयं माता और बच्चे की क्या दशा होगी।

जिस परिवार में आय अधिक होती है और माता को काम नहीं करना पड़ता वहाँ बाल-मृत्यु भी कम होती है। किन्तु जहाँ माता को काम करना पड़ता है और पिता की आय कम होती है वहां अधिक बालक मरते हैं। नीचे के अंक बरमिंघाम की हेल्थ रिपोर्ट से लिये गये हैं। वे स्पष्टतया इस बात का समर्थन करते हैं कि माता का घर पर रहना बच्चे के लिये बहुत अच्छा होता है।

		पिता की आय १५) सप्ताह से कम है।	पिता की आय १५) सप्ताह से अधिक है।
		बाल-मृत्यु १९१०—१९०९	बाल-मृत्यु १९१०—१९०९
माता फैक्टरी इत्यादि में नौकर है	...	२०३-२३५	१२३-१४६
माता घर पर रहती है और अस्पताल में हलका काम करती है	...	१८७-१७६	५३-१२०
माता कहीं नौकर नहीं है		१६१-१६६	१५०-१५४

ये अंक भली प्रकार बताते हैं कि बहुत गरीब परिवारों में उनकी अपेक्षा जिनकी स्थिति कुछ अच्छी है बाल मृत्यु पचास प्रति सैंकड़ा अधिक है।

गरीबी का बड़ा टेढ़ा प्रश्न है। यदि माता परिवार की कमी पूरी करने के लिए काम नहीं करती तो उससे परिवार के सब मनुष्यों को पीड़ा पहुँचती है। स्वयं माता को भी भर पेट भोजन नहीं मिलता। अतएव बच्चे को भी साथ में पीड़ित होना पड़ता है। माता बच्चे को पर्याप्त भोजन नहीं दे सकती। जब उसको ही पूरा भोजन न मिलेगा तो उसके शरीर में इतना दूध कहाँ से बनेगा जो बच्चे की आवश्यकताओं

को पूरा करेगा। ऐसी दशा में उसके लिए गौ इत्यादि के दूध का प्रबंध करना भी कठिन है।

गरीब लोग सदा ही अपनी विपत्ति की दलदल से निकलने का प्रयत्न किया करते हैं। यह ऐसी बड़ी दलदल है जिसमें। एक बार फँसने पर उससे निकलने का उपाय मिलना बड़ा ही दुस्तर है। निर्धनता के कारण वे ऐसा भोजन नहीं कर सकते जो उनके शरीर को दृढ़ करे। उत्तम अथवा उचित वस्त्र धारण करना उनके लिये कठिन है। इससे शीत इत्यादि सदा ही उनके शरीर की शक्तियों को घटाया करते हैं। रोग निवारण करने की शक्ति उनमें बिलकुल नहीं रहती। उत्तम और स्वच्छ स्थान रहने के लिये न मिलने के कारण उनकी शारीरिक दशा गिर जाती है जिससे रोग उनको हर समय दबाने को तैयार रहता है। इन सब कारणों से उनकी कार्य-निपुणता कम हो जाती है। इसलिये उन्हें अधिक वेतन नहीं मिलता। इससे आय घटती है। आय के घटने से ऊपर कहा हुआ विपत्ति चक्र फिर चल पड़ता है।

४. उचित भोजन न मिलना

बच्चे के लिये सब से उत्तम भोजन माता का दूध है। जीवन के प्रथम ६-७ मास तक बालक को माता के दूध के अतिरिक्त कुछ न मिलना चाहिए। उसकी सब आवश्यकताएँ इस दूध से पूरी हो जाती हैं। यदि बच्चे को प्रथम ६ व ७ मास तक माता का दूध मिलता रहे तो अवश्य ही उसकी शारीरिक दशा

उत्तम होगी और उसको अकाल मृत्यु के ग्रास से बचने का बहुत कुछ अवसर रहेगा।

बहुधा वे बच्चे जो ऊपरी दूध पर पाले जाते हैं मोटे और हृष्ट पुष्ट दिखाई देते हैं किन्तु वास्तव में उनके शरीर में इतनी सहन शक्ति नहीं होती जितनी कि दूसरे बालकों में, जिनको माता का दूध पीने को मिला है, होती है। बच्चे को माता का दूध न मिलने से बहुत हानि पहुँचती है। कुछ धनवान लोगों में देखा जाता है कि वहाँ माताएं बच्चों को दूध पिलाना बहुत जल्दी बन्द कर देती हैं। यह न केवल बच्चों के ही लिये बुरा है किन्तु स्वयं माता के लिये भी हानिकारक है।

जैसा आगे चलकर बताया जायगा माता के दूध के पश्चात् गौ का दूध ही बच्चे के लिये सब से अधिक गुणकारी है। किन्तु इसका उचित प्रयोग ही सब से अधिक कठिन है। इसको ठीक प्रकार से गरम करना, शुद्ध बरतन या शुद्ध स्थान में रखना, अवस्था के अनुसार इसमें साधारण जल की मात्रा मिलाना इत्यादि सब ऐसी बातें हैं जिनके लिये विशेष सावधानी की आवश्यकता है। दूध को पूर्णतया शुद्ध रखना बहुत कठिन है और यही कारण है कि जिन बच्चों को ऊपरी दूध दिया जाता है वे बहुधा रोगग्रस्त हो जाते हैं। यह सदा देखा जाता है कि गरमियों के दिनों में बच्चों को दस्त आने लगते हैं। इस में बच्चों की बहुत बड़ी

संख्या अस्त होती है। इसका यही कारण होता है कि गरमी के दिनों में दूध जल्दी बिगड़ जाता है।

जिन बच्चों को माता का दूध मिलता है उनमें ऊपरी दूध पीनेवाले बच्चों की अपेक्षा आधी मृत्यु होती है। सेफोर्ड (Salford) नामक नगर में इस बात का पूर्ण अनुसंधान किया गया था। उससे निम्नलिखित अंक उद्धृत किए जाते हैं।

	उत्पन्न हुए	मृत्यु हुई	बालमृत्यु प्रति १०००
जिन बच्चों को माता का दूध मिला	२८८०	३२८	११३.९
जिन बच्चों को ऊपरी दूध मिला	२३५	७४	३१४.९

केवल यही नहीं किन्तु माता का दूध पीनेवाले बच्चे अधिक हृष्ट पुष्ट होते हैं। इंग्लैंड इत्यादि में बच्चों के लिये स्थान स्थान पर अस्पताल बने हुए हैं। इन स्थानों का यह अनुभव है कि वहां जो बीमार बच्चे आते हैं उनमें अधिक संख्या उन बच्चों की होती है जिनको माता का दूध न मिलकर ऊपर का दूध मिलता है। स्तन-पोषित बच्चों का स्वास्थ्य अधिकतर अच्छा रहता है और इस कारण उनको औषधि की आवश्यकता नहीं होती।

उस समय में जब माता बच्चे को दूध पिलावे, माता के

भोजन का विशेष प्रबन्ध रहना चाहिए। उसे न केवल अपने ही शरीर के पोषण के लिये भोजन चाहिए, किन्तु बच्चे के लिये भी चाहिए। यदि उसे उचित और पर्याप्त भोजन न मिलेगा तो वह बच्चे को पर्याप्त दूध देने में असमर्थ होगी। स्वयं उसका भी स्वास्थ्य गिर जायगा जिससे बच्चे पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। दूध माता के लिये बहुत आवश्यक और गुणकारी भोजन है। शुष्क फल, मक्खन, मलाई इत्यादि माता के लिये आवश्यक हैं।

यहाँ पर कंगाली का प्रश्न फिर उठता है। जिनको स्वयं उचित भोजन पेट भरने को नहीं मिलता वे किस भाँति बच्चों का उत्तम और उचित प्रकार पोषण कर सकती हैं। जब स्वयं उनको भोजन न मिलेगा तो बच्चे के लिये पर्याप्त दूध भी वे उत्पन्न न कर सकेंगी। यदि दूध उत्पन्न होना बन्द न भी होगा तो वह अवश्य पतला हो जायगा। और उसमें इतनी पोषक-शक्ति न रहेगी। इस कारण बच्चे को दूध पिलानेवाली माता के लिये यह आवश्यक है कि उसका भोजन भी उत्तम हो।

किन्तु जहाँ स्वयं पेट भर भोजन पाने का प्रश्न उपस्थित है वहां उत्तम भोजन पाना तो मानो स्वप्न देखना है। ऐसी दशाओं में सरकार की ओर से सहायता की आवश्यकता है। ऐसी माताओं के लिये जिनको आवश्यकता हो और जो स्वयं उत्तम भोजन पाने में असमर्थ हों, सरकार की ओर से

उचित भोजन का प्रबन्ध होना चाहिए। युरोप और अमरीका के देशों में ऐसा ही प्रबन्ध है। बहुत सी संस्थाओं का यही कार्य है। बहुत से स्थानों पर दूध पिलानेवाली माताओं को दूध बिना मूल्य अथवा नाम मात्र मूल्य पर दिया जाता है। यहां पर इसी प्रकार के प्रबन्ध की बहुत आवश्यकता है।

दूध पिलानेवाली माता के लिये कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) माता को उचित पर्याप्त पुष्टिकारक भोजन मिलना चाहिए।

(२) उसको बहुत अधिक परिश्रम न करना चाहिये।

(३) उसकी शारीरिक दशा उत्तम होनी चाहिये।

(४) उसके चित्त में कभी बहुत उद्विग्नता न उत्पन्न होनी चाहिये।

(५) स्तन के मुखों पर उसको विशेष ध्यान देना उचित है।

स्वास्थ्य का रहने के स्थान से बहुत कुछ संबंध है।

५. रहने का स्थान

उत्तम स्थानों में रहने से, जहां पूर्ण स्वच्छता हो, गंदगी कहीं जमा न हो, शरीर का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। ऐसे मकान जिनके कमरों में वायु का भली भाँति प्रवेश नहीं होता और न सूर्य का प्रकाश ही आता है, स्वास्थ्य को गिरानेवाले होते हैं।

रहने के स्थान में कई बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सब से प्रथम यह आवश्यक है कि उसके भीतर स्वच्छ वायु के आने के मार्ग में किसी प्रकार की भी रुकावट न हो। इसके लिये आवश्यक है कि मकान के चारों ओर कुछ खुला हुआ स्थान छोड़ दिया जाय। मकान के भीतर भी कुछ सहन होना चाहिए। मकान के प्रत्येक कमरे में सूर्य का प्रकाश पहुँचना बहुत आवश्यक है। सूर्य का प्रकाश बहुत से रोगों के जीवाणुओं को नाश करता है। मकान और वस्त्रों को शुद्ध करनेवाला और रोगों का नाश करने-वाला इससे अधिक उत्तम दूसरा पदार्थ नहीं है। जिस कमरे में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता वह रहने योग्य नहीं है। फिर ऐसे कमरों में तो बच्चों को कभी भी नहीं रखना चाहिए। उनपर शुद्ध वायु और सूर्य के प्रकाश का बहुत प्रभाव पड़ता है।

बड़े नगरों में रहने के लिये उत्तम स्थान पाने का प्रश्न बड़ा कठिन है। छोटे स्थानों में गरीबों को इतनी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। किन्तु बड़े नगरों में, जैसे कलकत्ता या बम्बई, बहुधा लोग बासे या चालों में रहते हैं। अधिकतर एक परिवार के पास रसोई का छोटा सा एक कमरा होता है और दूसरा कमरा होता है जहाँ उनको अपना सब सामान रखना होता है। इसी कमरे में उनके

चौबीसों घंटे व्यतीत होते हैं । खाने इत्यादि की वस्तु भी यहीं रहती है ।

ऐसे स्थानों में रहनेवाले बच्चों को शुद्ध वायु और प्रकाश नहीं मिलता जो उसके लिये भोजन के ही बराबर आवश्यक है। उनको खेलने के लिये उत्तम स्थान नहीं मिलता। उस सब का यह परिणाम होता है कि उनका शरीर दृढ़ नहीं होता। उनमें स्फूर्त्ति नहीं आती। रोग को रोकने की शक्ति उनके शरीर में उत्पन्न नहीं होती। कृश तन, मलिन मन, पीले मुखवाले बच्चे इन स्थानों में तय्यार होते हैं। यदि दैव योग से बाल्यकाल में अकाल-मृत्यु के ग्रास से वे बच जाते हैं तो बड़े होकर जाति का निकृष्ट भाग बनाने के मुख्य साधक होते हैं।

यह प्रश्न युरोप के देशों में हमारे देश से भी कहीं अधिक गूढ़ और कठिन है। वहां गरीब आदमियों के रहने के लिये हमारे देश के बासों की भाँति मकान होते हैं जिनको स्लम कहते हैं। बेचारे मज़दूर लोग यहीं अपना गुजर करते हैं। उनकी साप्ताहिक आय का एक बहुत बड़ा भाग इस स्थान के, जहां उनको केवल एक कमरा मिलता है, किराये में ख़र्च हो जाता है। जो वहाँ की जातियों का निकृष्ट भाग है वह इन स्थानों पर मिलता है। व्यभिचार और पाप के ये स्थान होते हैं। यहाँ के रहनेवालों को शराब पीने की बहुत आदत होती है। युरोप के देशों में सब से

अधिक मद्य का प्रचार ग़रीबों ही में है। संध्या के समय जब मज़दूर लोग अपने काम से लौटते हैं तब उस समय शराबख़ानों में भीड़ लग जाती है। ये बेचारे कंगाली के सताये हुए अपने घर पर किसी प्रकार का सुख नहीं पा सकते क्योंकि उनको ऐसा घर ही नहीं है। अतएव अपनी चिन्ताओं को कुछ समय तक भुलाने के लिये और व्यथा को दूर करने के लिये इन शराबख़ानों का आश्रय लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी आय का, जो कि पहले ही बहुत थोड़ी है, एक बड़ा भाग शराब में चला जाता है। इससे उनका आर्थिक कष्ट और भी बढ़ जाता है। ग़रीबी ही से यह दुर्व्यसन उत्पन्न होता है और फिर ग़रीबी को बढ़ाता है।

हमारे देश में साधारणतः यह प्रश्न इतना जटिल नहीं है जितना कि पाश्चात्य देश में है। किन्तु तो भी बड़े बड़े नगरों में यह प्रश्न दिनों दिन अधिक कठिन होता जा रहा है। वासे या खालों ऐसे स्थानों में रहनेवालों का स्वास्थ्य अधिकतर बहुत ही क्षीण होता है। एक तो आर्थिक कमी के कारण वे उत्तम भोजन प्राप्त नहीं कर सकते। दूसरे इन स्थानों का जीवन उनका स्वास्थ्य और गिरा देता है। उनको कोई विशेष रोग नहीं होता किन्तु स्वास्थ्य की दशा गिरी हुई रहती है। दिन भर के परिश्रम के पश्चात शारीरिक शक्ति की क्षीणता को पूरा करने के लिये शुद्ध वायु

की बहुत आवश्यकता है जिससे पाचन शक्ति बढ़े और रक्त शुद्ध हो। साथ ही चारों ओर शांति हो जिससे उसको सुख की निद्रा आवे। किन्तु जहां पर ये दशाएं उपस्थित न हों वहां शारीरिक क्षीणता का बढ़ना ही स्वाभाविक परिणाम है।

रहने के ऐसे स्थानों के कारण बाल-मृत्यु की संख्या बहुत बढ़ जाती है। पश्चात्य देशों में ऐसे अंक एकत्र किये गये हैं जिनसे मालूम हो कि थोड़े से स्थान में निर्वाह करनेवाले और अधिक स्थान में रहनेवाले परिवारों में बाल-मृत्यु के संबंध में क्या निस्बत है। उनके देखने से मालूम होता है कि केवल एक कमरे में निर्वाह करनेवाले परिवारों में बाल-मृत्यु की संख्या २५० के लगभग है, अर्थात् १००० बालक यदि जन्म लेते हैं तो उनमें से २५० मर जाते हैं। जिनके पास दो कमरे हैं उनमें १५० मृत्यु संख्या है। तीन कमरेवाले परिवारों में में यह संख्या १२५ के लगभग है। जिनके पास चार कमरे हैं उनमें बाल-मृत्यु १०० से कम है।

इस दुख को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि म्यूनिसिपैलिटी और इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट (Improvement Trust) अपना ध्यान इस ओर दें। उन्हें शहर को सुन्दर बनाने के साथ ही साथ गरीबों की इस आवश्यकता को, जिसका प्रभाव सारी जाति पर पड़ता है, पूरा करने का ध्यान रखना चाहिए। इसके साथ में दूसरी जातीय संस्थाओं को भी सहयोग करना

चाहिए। इनकी ओर से उत्तम आदर्श मकान (model houses) बनाए जाने चाहिएँ। ऐसे मकान जिनके पीछे की दीवारें आपस में मिली होती हैं, कदापि न बनाए जाने चाहिएँ क्योंकि इससे मकान की वायु की गति में अवरोध होता है। इन मकानों में वायु और प्रकाश आने का पूर्ण प्रबंध होना चाहिए। घर के गन्दे पानी और मल मूत्र के निकलने का ऐसा प्रबंध होना चाहिए कि उसके लिये मकानवालों को किसी विशेष व्यक्ति पर निर्भर न रहना पड़े, अर्थात् ऐसा न होना चाहिए कि यदि एक दिन भंगी न आए तो सारा मकान दुर्गंधि से परिपूरित हो जाय। इसके लिये स्वयं निष्कारक मल-स्थानों का प्रयोग करना चाहिए।

इन मकानों को बनाते समय एक बात जो सब से अधिक आवश्यक है ध्यान में रखनी चाहिए कि मकानों का किराया जितना भी कम हो सके रखा जाय जिससे प्रत्येक मनुष्य को, गरीब से गरीब को भी, वहां रहने का अवसर मिले। इसका सब से उत्तम उपाय यह है कि सब स्थानों में ऐसी देश-हितकारक संस्थाएँ बनाई जायँ जो अपने रुपये से उन मकानों को बनवाएँ और साथ में इस बात का दृढ़ निश्चय कर लें कि न तो वे स्वयं ही एक पैसे का लाभ उठायेंगे और न दूसरे को उन मकानों से किसी प्रकार का आर्थिक लाभ होने देंगे। ऐसा करने से गरीबों का यह दुख बहुत

कुछ दूर हो सकता है और निस्संदेह बाल-मृत्यु की संख्या भी बहुत कुछ घट सकती है।

गाँवों में स्थान का अभाव नहीं होता। इसलिए वहां के बच्चों को वायु और सूर्य-प्रकाश से वंचित नहीं रहना पड़ता। उनको खेलने के लिए भी बहुत काफी स्थान मिल जाता है। किन्तु गाँवों में एक खराबी देखी जाती है। वहाँ पर घर को स्वच्छ रखने और स्वच्छता के दूसरे नियमों की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है क्योंकि वहां के लोग इन बातों से अनभिज्ञ होते हैं। घर में सोने के स्थान के पास ही बहुधा गौ और भैंस इत्यादि बँधी रहती हैं जिससे स्थान गन्दा होता है। उससे मच्छड़ और मक्खियाँ उत्पन्न होकर बीमारियाँ फैलाती हैं। इस कारण गौ इत्यादि के बँधने का स्थान सोने और बैठने के स्थान से कुछ दूरी पर होना चाहिए।

घर का कूड़ा इत्यादि भी घर के पास न फेंक कर दूर डालना उचित है। यदि इन सब स्वास्थ्यकर नियमों का पालन किया जाय तो प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक दशा बहुत उत्तम हो सकती है और विशेष कर बच्चों के स्वास्थ्य की बहुत उन्नति हो सकती है।

बच्चों में सहन शक्ति बहुत कम होती है। इस कारण उनको ठंड बहुत जल्दी लग जाती है। इसीसे उनको सदा वस्त्र ठीक प्रकार से पहनाना बहुत आवश्यक है। कितने बालक केवल इसी

६. वस्त्र

वस्त्र पहनाने में असावधानी के कारण मृत्यु के ग्रास बनते हैं।

जाड़ों में वस्त्रों की कमी से जितनी हानि होती है, गरमियों में वस्त्रों की अधिकता से उससे कम हानि नहीं होती। बच्चों को वस्त्र किस भाँति पहनाने चाहिएँ, यह आगे चल कर भली भाँति बताया गया है।

बाल-मृत्यु संख्या के इतने अधिक होने का एक बहुत बड़ा कारण यह है कि माताएँ भली प्रकार से बच्चों का पालन करना नहीं जानतीं। बाल्य-काल में माता ही बच्चे की रक्षक होती है। बच्चे का जीवन माता की सावधानी पर निर्भर करता है। यदि माता बच्चे की भली भाँति देख भाल करती है, उचित शुद्ध भोजन नियत समय पर नियत मात्रा में देती है, बच्चे को स्वच्छ रखती है, उसके वस्त्र इत्यादि का उत्तम प्रबंध रखती है तो उस बच्चे का स्वास्थ्य उत्तम रहेगा और उसके दीर्घजीवी होने की बहुत संभावना है। किन्तु यदि माता बच्चे की स्वच्छता की ओर ध्यान नहीं देती, उसको भोजन भी गरम ठंडा जैसा हुआ जब तब दे दिया जाता है तो बच्चे का स्वास्थ्य तो कभी उत्तम नहीं हो सकता। उसके बहुत दिन जीवित रहने में भी संदेह है। इससे यह न समझना चाहिए कि माता बच्चों के लिये कष्ट उठाना नहीं चाहती। ऐसी बहुत ही कम माताएँ मिलेंगी जो अपने बच्चों के लिये अपना सर्वस्व देने के लिये

७. माता की अनभिज्ञता

तैयार न हों। अपने बच्चों के लिये जो कुछ भी वे कर सकती हैं उसमें से कोई बात उठा नहीं रखतीं; किन्तु जो बात वे जानती ही नहीं उसके लिये वे क्या कर सकती है। इसमें हमारा ही दोष है कि हम उनको इस बात की कोई शिक्षा नहीं देते। उनको माताएँ तो बना देते हैं किन्तु उनको उनकी आगामी जिम्मेदारियोँ के लिये और भावी जीवन के लिये तनिक भी तैयार नहीं करते।

बहुधा एक ही परिवार में अथवा एक ही मुहल्ले में पास पास रहती हुई उत्तम बुद्धिमती और अनभिज्ञ माताएँ देखी जाती हैं। बहुधा दोनों के पतियों की आय भी समान ही है किन्तु जहाँ एक का घर स्वच्छ और शांति का स्थान है और बच्चे भी स्वच्छ, तन्दुरस्त, आज्ञाकारी और देखने में भले जान पड़ते है, वहां दूसरी का घर गन्दा और कूड़ाकरकट का संग्रह स्थान देख पड़ता है। बच्चे भी मैले कुचैले कपड़े पहने हुए, कृशतन, पीतवर्ण, दिखाई पड़ते हैं जिससे मालूम होता है कि उनका पालन ठीक प्रकार से नहीं किया गया है। इस अंतर का कारण यही है कि जहां एक माता पूर्णतया जानती हैं कि बच्चे के स्वास्थ्य के लिये कौन कौन सी बातें आवश्यक है; उसका किस प्रकार पालन होना चाहिए, वहां दूसरी माता बिलकुल अनभिज्ञ है। उसको यह नहीं मालूम कि किन उपायों से बच्चे का शरीर पुष्ट हो सकता है अथवा किन किन दशाओं में क्या करना चाहिए।

वह नहीं जानती कि उचित वस्त्र न पहनाने का या गंदा रखने का बच्चे पर क्या प्रभाव पड़ता है।

युरोप के देशों में बच्चों के लिये जहाँ तहाँ अस्पताल बने हुए हैं जहां केवल बच्चों ही की चिकित्सा होती है। यहां पर केवल वही डाक्टर रहते हैं जो बाल-चिकित्सा में निपुण हों। इन अस्पतालों का भी यही अनुभव है कि जो बच्चे रोगग्रस्त होकर चिकित्सा के लिये वहां आते हैं उनमें अधिक संख्या ऐसे रोगियों की होती है जो माता की असावधानता या अनभिज्ञता के कारण बीमार होते हैं। जब माताएँ बच्चों को वहां लाती हैं तो उनको बच्चे के खाने पिलाने के संबंध में सब बातें पूर्णतया बता दी जाती हैं। एक बार नहीं कई बार ऐसा किया जाता है। किन्तु जब अस्पताल के कर्मचारी देखते हैं कि उनकी शिक्षा का कुछ भी असर नहीं होता और बच्चे की दशा वैसी ही है तो वे हार कर बच्चे को अस्पताल में रख लेते हैं, जहां शिक्षित दाइयाँ बच्चों की देख रेख में नियुक्त रहती हैं। यहां पर उसी विधि के अनुसार जो माता को बताई गई थी, बच्चे का पालन पोषण किया जाता है; उसी भाँति उसे भोजन मिलता जैसा माता को बताया गया था। परिणाम यह होता है कि बच्चा थोड़े ही समय में पहले से बहुत अच्छा हो जाता है। उसका शारीरिक भार बढ़ जाता है और देखने में भी भला मालूम होता है, माता प्रसन्न होकर उसे अस्पताल से ले जाती है। कुछ समय तक बच्चे का कुछ पता नहीं लगता

किन्तु कुछ सप्ताह के पश्चात् वही बच्चा माता द्वारा फिर अस्पताल में लाया जाता है। किन्तु इस समय वह अपनी पुरानी दशा का जब अस्पताल से गया था छाया मात्र रह जाता है।

इन सब बातों से मालूम होता है कि शिक्षा की सब से बड़ी आवश्यकता है। उनको पहले से भली भाँति जानना चाहिए कि भविष्य में उनका क्या कार्य होगा और वह किस प्रकार होगा। इसके लिये स्वास्थ्य निरीक्षक (Health Visitor) नियुक्त किये जाने चाहिएँ, जो प्रत्येक घर और विशेष कर गरीब घरों में (क्योंकि गरीबों को चिकित्सा इत्यादि की अमीरों की भाँति सुविधा नहीं होती) जाकर माताओं को उनका कर्त्तव्य बतावें और उनकी अनभिज्ञता को दूर करने का प्रयत्न करें। ये शिक्षित अनुभवी और सदाचारी स्त्रियाँ ही होनी चाहिएँ जो दूसरों के कष्ट को अपना कष्ट समझें और उनके साथ पूर्ण सहानुभूति रखें। इससे स्त्रियों को उनमें विश्वास और श्रद्धा उत्पन्न होगी और वे आवश्यकता के समय में सदा उनका आश्रय लेंगी; उनकी शिक्षा पर काम करेंगी। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार का पूरा प्रबंध होता है जिससे गर्भवती स्त्रियाँ बहुत लाभ उठाती हैं।

इस विषय पर अमरीका के न्यूयार्क नगर में बहुत अनुसंधान हुआ है। जिन डाक्टरों ने यह अनुसंधान किया है उन सब का यह मत है कि बच्चे के जीवन पर किसी भी दूसरी

बात का इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि माता के शिक्षित और बुद्धिमती होने का पड़ता है।

माता को बच्चे के बारे में ये सब बातें जानना चाहिए। उसको यह भी जानना चाहिए कि बच्चे की आवश्यकताएँ किस प्रकार पूरी करनी चाहिएँ। यह सब ज्ञान उसको बच्चे के जन्म लेने से पूर्व ही प्राप्त कर लेना चाहिए।

विवाहित स्त्रियों का फैक्टरी इत्यादि में काम करना

बड़े बड़े नगरों में या अन्य स्थानों में जहां मिल या फैक्टरी की संख्या अधिक है ऐसी स्त्रियों की संख्या काफी मिलेगी जो इन फैक्टरी या मिलों में काम करके अपनी जीविका उपार्जन करती हैं। इनमें सब भाँति की स्त्रियाँ होती हैं। अविवाहित लड़कियाँ भी होती हैं। विवाहिता सन्तानवाली स्त्रियाँ भी काम करती हैं और बुड्ढी विधवाएँ भी अपने पेट पालने के लिए काम करती हैं। मिल फैक्टरियों के अतिरिक्त भी नीची जाति की स्त्रियाँ अपने और अपने कुटुम्ब के उदर पूरणार्थ कुछ न कुछ काम करती हैं। यहां पर अविवाहित और विधवाओं के संबंध में हमें कुछ विचार नहीं करना है। हमको यह देखना है कि जिन स्त्रियों के छोटे छोटे बच्चे हैं उनके व्यवसाय का बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है अथवा जो विवाहित हैं उनका भावी सन्तान पर क्या असर पड़ेगा।

जिन स्त्रियों को शारीरिक परिश्रम करके अपनी जीविका उपार्जन करने के हेतु अपनी सन्तान को घर पर अकेले छोड़

कर काम पर जाना पड़ता है उनको कुछ अपनी सन्तान से कम प्रीति नहीं होती। इसका कारण यह होता है कि परिवार में कमानेवाला तो एक होता है और खानेवाले दस होते हैं। अतएव कमानेवाले की आय इतनी काफी नहीं होती कि घर के सारे खर्चे के लिये पूरी हो सके। इस कमी को पूरा करने के लिये उसे अपने प्यारे बच्चे को किसी दूसरे के सुपुर्द कर के काम पर जाना पड़ता है। माताओं को अपने बच्चे को छोड़ते हुए बहुत दुःख होता है किन्तु उनको विवश होकर ऐसा करना पड़ता है।

इसका यह परिणाम होता है कि बच्चे की जैसी देख रेख होनी चाहिए वैसी नहीं हो सकती। माता की अनुपस्थिति में बच्चे को गौ का दूध मिलता है जिसके पूर्णतया शुद्ध रहने में बहुत कुछ संदेह हो सकता है। बच्चे को माता का दूध भी शीघ्र ही छोड़ देना पड़ता है और इस प्रकार बच्चा अपने स्वाभाविक भोजन से वंचित हो जाता है। ऊपर के दूध से बच्चा बहुधा रोगग्रस्त हो जाता है उसकी शारीरिक शक्तियाँ कम हो जाती हैं, और उसमें रोग निवारण की शक्ति बिलकुल नहीं रहती। उसके वस्त्र इत्यादि का प्रबंध भी ठीक रहना कठिन है। इस सब बातों का प्रभाव बच्चे के जीवन पर बुरा होता है। बाल-मृत्यु संख्या बढ़ाने का यह भी एक कारण है। छोटे नगरों में या अन्य स्थानों में जहां बहुधा माताएँ बच्चे को अपने साथ ही काम पर ले जाती हैं, यह प्रश्न इतना

कठिन नहीं है। माताएँ बच्चे को समय पर दूध पिला सकती हैं। यदि बच्चे ने मल या मूत्र कर दिया तो उसे वे साफ़ कर सकती है। ऐसे काम बहुधा कठिन भी नहीं होते।

जहां मिल, फैक्टरी या अन्य स्थानों में कठिन परिश्रम करना पड़ता है जैसे भारी वस्तुएँ उठाना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भारी भारी बंडल ले जाना, वहाँ गर्भवती स्त्रियों को विशेष कर और साधारणतः किसी भी विवाहिता स्त्री को काम न करना चाहिए। हलका काम उनके लिये बुरा नहीं है। उससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा।

काम करनेवाली स्त्रियों को बच्चा होने के कम से कम दो मास पहले से काम करना छोड़ देना चाहिए। उस समय उनको परिश्रम से विश्राम लेना चाहिए। इसका बच्चे की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। माता की शारीरिक दशा पर बच्चे की दशा निर्भर करती है। यदि वह प्रसव के दिन तक कठिन परिश्रम करती रहेगी और उसकी दशा के अनुसार उसको उत्तम भोजन न मिलेगा तो अवश्य ही उसकी दशा भी गिर जायगी और बच्चे की शारीरिक वृद्धि भी अधिक नहीं होगी। हां हलका काम करने में कोई हानि नहीं है। उससे हानि के बदले लाभ ही होगा। किन्तु अपनी शारीरिक सामर्थ्य से ऊपर काम करना अवश्य ही बुरा है। इंग्लैंड के एक नगर के अंक नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

३००० २५०० २००० १५०० १००० ५००

३०१० ३२६० ३२६६ ग्राम

१ २ ३

१. ५०० बच्चों के शरीर का भार जिनकी माताओं ने प्रसव के दिन तक काम किया।

२. ५०० बच्चों के शरीर का भार जिनकी माताओं ने प्रसव के १० दिन पूर्व काम छोड़कर मेटर्नटी-होम में विश्राम किया।

३. ५०० बच्चे जिनकी माताओं ने अधिक दिन तक विश्राम किया।

जन्म के पश्चात् माता के काम पर जाने से बच्चे को दो प्रकार से हानि पहुँचती है। एक तो बच्चों को माता का दूध नहीं मिलता, उसके स्थान में उसको ऊपरी गौ इत्यादि

का दूध मिलता है। दूसरे माता के काम पर जाने के पश्चात् बच्चे की इतनी देख रेख नहीं हो सकती। जैसा पहले कहा जा चुका है इन दोनों बातों का बच्चे के जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

माता को बच्चे उत्पन्न होने के दो महीने पहले और दो महीने पीछे तक काम पर न जाना चाहिए। यदि इससे अधिक ठहर सकें तो बहुत ही अच्छा है। इसके लिये सरकार की ओर से कानून होना चाहिए जिससे फैक्टरीवाले स्त्रियों को ऐसे समय पर छुट्टी देने के लिये बाध्य हों। उस समय के लिये वह उनके वेतन में से कुछ नहीं काट सकते। जर्मनी में कानून के अनुसार स्त्रियाँ बच्चा होने के दो महीने पूर्व और दो महीने पश्चात् तक नौकर नहीं की जा सकतीं। ऐसी स्त्रियों की सुविधा के लिये वहां यह भी प्रथा है कि प्रत्येक स्त्री का पहले से बीमा कर लिया जाता है। इससे जब उसको बच्चा होता है तो उतने दिन के लिये जब तक वह काम नहीं कर सकती, उसे आधा वेतन मिल जाता है। इससे उसको बहुत सुविधा होती है।

पिता के उद्योग और बाल-मृत्यु का संबंध

युरोप के कुछ देशों में इस बात को जानने के लिये भी अंक एकत्र किए गए हैं कि पिता के व्यवसाय के साथ बाल मृत्यु का क्या संबंध है। निम्नलिखित अंक उन्हीं अंकों से उद्धृत किए जाते हैं—

		बाल-मृत्यु मास
मिस्तरी, व्यापारी, डाक्टर, वकील, पादरी, फौजी, व दूसरे अफसर	जन्म ५६५५८	०-१, १-३, ३-६, ६-१२ २१·०, ६·२, ६·२, ८·१.
फैक्टरी के मजदूर, लोहे का काम करनेवाले, फेरी लगाकर सौदा बेचनेवाले इत्यादि		८०·९, ४९, ४६·३, ३१·७, ३६·४, ५६·८.

प्रथम समूह उन लोगों का है जिनमें अधिक संख्या शिक्षित जनों की है और जिनको आर्थिक कष्ट भी बहुत नहीं है। वे लोग नियमित स्वच्छ जीवन व्यतीत करते हैं और स्वास्थ्य के नियमों से भी अनभिज्ञ नहीं हैं। इसी कारण से इनमें दूसरे समुदाय की अपेक्षा मृत्यु-संख्या कम है। पहले मास में मृत्यु सब से अधिक हैं। इसके पश्चात् कम हो जाती है। प्रथम मास में अधिकतर उन बच्चों की मृत्यु होती है जिनके शरीर की बनावट ही में कुछ त्रुटि होती है अथवा जो इतने दुर्बल होते हैं कि उनका जीना असंभव है।

दूसरे समुदाय में सारे वर्ष भर में मृत्यु संख्या एक समान है। अंतिम छः महीने में यह और भी अधिक हो जाती है।

माता पिता की आयु और बाल-मृत्यु

माता पिता की आयु का बच्चे के शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जितने बच्चों की प्रति वर्ष मृत्यु होती है, उसमें काफी भाग ऐसे बच्चों का होता है जिनकी मृत्यु का मुख्य कारण माता की छोटी अवस्था होती है। इस प्रश्न की पूरी तरह व्याख्या पहले की जा चुकी है। यहां यह कहना आवश्यक मालूम होता है कि बच्चा उत्पन्न करने के समय माता की अवस्था १८ वर्ष से कम न होनी चाहिए। इससे नीचे की अवस्थावाली स्त्री की सन्तान उत्तम स्वास्थ्यवाली नहीं हो सकती और उसके जीने की भी संभावना बहुत अधिक नहीं होती। इसके विरुद्ध यदि माता की आयु बहुत अधिक है तो भी सन्तान उत्तम न होगी। वह सदा कृश शरीर और पतली दुबली होगी। उसकी मृत्यु का भी अवसर बहुत अधिक होगा।

माता के स्वास्थ्य का बच्चे पर प्रभाव

यदि माता का स्वास्थ्य उत्तम नहीं है तो उत्पन्न होनेवाले बच्चे का शरीर कभी दृढ़ और स्वस्थ नहीं हो सकता। जो माताएँ सदा रोगी रहती हैं उनकी संतान भी रोगी ही होगी। कंगाली के कारण जिनको उत्तम भोजन नहीं मिल सकता उनके बच्चे सदा कमजोर होंगे। जिनको गर्भावस्था में उत्तम भोजन इत्यादि की सुविधा है उनकी सन्तान ही पुष्ट होगी। इंग्लैंड के बच्चों के अस्पतालों का भी यही अनुभव है। अधिकतर ऐसे बच्चे वहां आते हैं जिनकी माताओं को

भोजन मिलना कठिन है। इस कारण बच्चों को भी उनकी आवश्यकता से कम ही भोजन मिलता है। इससे उनका स्वास्थ्य बुरा होता है और रोग भी उनको शीघ्र ही दबा लेते हैं।

बाल-मृत्यु के मुख्य कारण ऊपर बताए जा चुके हैं। अब हमें यह देखना है कि बाल-मृत्यु की संख्या को कम करने के लिये हमें क्या करना चाहिए। कौन कौन से साधनों से हमारे देश की शक्ति और भावी आशाओं को नाश होने से रोका जा सकता है। यह कहते हुए चित्त को बड़ा दुःख होता है कि हमारे यहां के सज्जनों के ध्यान में अभी इसकी आवश्यकता नहीं आई है। अन्य नाना प्रकार के आंदोलनों को तो वे अवश्य ही उचित समझते हैं किन्तु कदाचित उनको यह प्रश्न इतने महत्त्व का नहीं मालूम होता कि वे इस पर अपने सर को खपाएँ और बहुमूल्य समय का भी नाश करें।

जब तक हमारे देश में बाल-जीवन के नाश की यही गति रहेगी, उत्पन्न हुए प्रत्येक पांच में से एक फूल कली ही की अवस्था में मुरझा जायगा तब तक हम के लिये क्या अधिक आशा की जा सकती है। यही नहीं, बड़े बड़े नगरों में तो प्रत्येक दो में से एक बच्चा कुछ दिवस जीवित रह कर अपनी सांसारिक यात्रा को समाप्त कर देता है। कोई समय था जब युरोप के देशों में भी यही हाल था। वहां भी

बालमृत्यु की संख्या हमारे देश ही की भांति बहुत अधिक थी। किन्तु वहां के निवासी साहसी, उद्यमी और कार्यकुशल हैं। वे अपने समय के जाति पांत के अन्ध प्रश्नों पर और छूआ-छूत के रागों पर ही अपना समय नष्ट नहीं करते। वे सचमुच ही उपयोगी कार्य करना जानते हैं। वे जानते हैं कि किस प्रकार मरुस्थल को शश्य-संपन्न उपजाऊ भूमि में परिवर्त्तित किया जा सकता है। उन्होंने इस प्रश्न की महत्ता को समझा और बिचारा और काम किया जिसका परिणाम यह है जहां इंग्लैंड में १८९९ में बाल-मृत्यु १६३ थी वहां आज ७८ से भी कम है। क्या उन्हीं साधनों द्वारा हम अपने देश की रक्षा नहीं कर सकते? अवश्य कर सकते हैं यदि हम अपने समय और शक्ति का व्यर्थ गवाना छोड़ दें और स्वप्न देखने की आदत का त्याग कर दें।

ऊपर कहा जा चुका है कि कंगाली सब कारणों का एक कारण है। यह जड़ है जिससे नाना शाखाएँ फूटती हैं। जो लोग धनवान हैं वे तो किसी न किसी भाँति सब प्रकार का प्रबंध कर लेते हैं। मुश्किल उन गरीबों को है जिनके पास खर्च करने के लिये काफी रुपया नहीं होता और इस कारण वे अपनी आवश्यकताओं से भी वंचित रह जाते हैं।

हम देख चुके हैं कि माताओं की अनभिज्ञता बाल-मृत्यु का एक बहुत बड़ा कारण है। जिस समय कोई स्त्री गर्भवती

होती है और विशेष कर जब पहली बार गर्भ धारण करती है तब उसे नहीं मालूम होता कि किस समय पर उसके लिये कौन कौन सी बातें आवश्यक हैं। वह नहीं जानती कि उसका कैसा भोजन होना चाहिये ; किस प्रकार उसकी दिन-चर्य्या होनी चाहिए; प्रसव के समय पर क्या बातें आवश्यक हैं। जब बच्चा उत्पन्न हो जाय तो उसकी देख भाल किस प्रकार करनी चाहिए।

ऐसी ऐसी सब बातों का स्त्रियों को पहले से पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इसके लिये कन्या-पाठशालाओं की ऊँची कक्षा की पाठ-विधि में इस विषय को सम्मिलित करना चाहिए। पाठविधि में स्वास्थ्य के साधारण नियम, गृह को स्वच्छ रखना, वस्त्रों की स्वच्छता, शारीरिक स्वच्छता, गर्भकाल, उस समय की उपयोगी बातें, प्रसव की रीति, बच्चे का पालन-पोषण, उसका भोजन, साधारण रोगों की चिकित्सा इत्यादि बातें सम्मिलित होनी चाहिएँ। इसमें उनकी परीक्षा भी होनी चाहिए। ऐसा करने से वे कन्याएँ अपने भावी कर्त्तव्य को समझ जायँगी और इस प्रकार से उन्हें जो ज्ञान प्राप्त होगा वह आगे चल कर बहुत सहायक होगा।

यदि कोई महाशय इससे सोचें कि कन्याओं को सब बात स्पष्टतया बताना लज्जा की बात होगी तो उनसे हमारी हाथ जोड़ कर यह विनीत प्रार्थना है कि वे अपनी लज्जा

की चादर को ओढ़े हुए भारतवर्ष की कब्र खोदने का काम जारी रखें। जिनको ऐसी लज्जा छोड़ गई है और जो कुछ समझने लगे हैं वे इस काम को पूरा कर लेंगे।

साधारण स्कूलों के अतिरिक्त और भी यतस्ततः ऐसे स्कूल होने चाहिएँ जहाँ स्त्रियों को ये सब बातें बताने का प्रबंध हो, जहाँ जाकर इच्छुक माताएँ अपने सब सन्देह दूर कर सकें और पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकें। सारा पाठ बहुत ही साधारण भाषा में होना चाहिए जिससे सब भली प्रकार से समझ लें। पढ़ाने की शैली उसी भाषा में होनी चाहिए जिसे वहाँ की स्त्रियां बहुत अच्छी तरह समझती हों। संक्षेपतः पढ़ानेवालों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह परीक्षा के लिये नहीं पढ़ा रहे हैं किन्तु इसलिये पढ़ा रहे हैं कि उन सब स्त्रियों की समझ में आ जाय और वे पाठ की उपयोगिता को चित्त में धारण कर लें। पढ़ानेवालों का काम यहां ऐसा साधारण नहीं होगा जैसा कि स्कूलों में होता है। युरोप के देशों का, जहां ऐसे बहुत स्कूल हैं, यह अनुभव है कि ऐसे क्लासों (कक्षाओं) में उपस्थित माताएँ, यद्यपि उनके कई बच्चे हो चुके हैं, बहुत ही अनभिज्ञ होती हैं।

इस काम को संतोषपूर्वक पूरा करने के लिये आवश्यक है कि पढ़ानेवालों को, जो शिक्षित स्त्रियाँ ही होनी चाहिएँ, श्रोताओं को कठिनाइयों को स्वयं भली भाँति समझना चाहिए। थोड़े समय के लिये स्वयं अपने को उनके स्थान पर

मान कर सब बातें इस प्रकार बतानी चाहिएँ कि वे भली भाँति समझ जायँ और उसको केवल एक गल्प या कहानी न मानकर उपयोगी समझें। शिक्षकों का यह काम कुछ साधारण काम नहीं है। उनको बहुत कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। माताएँ अधिकतर अनपढ़ और अनभिज्ञ मिलेंगी जो सहज में किसी बात को नहीं समझेंगी। इसके अतिरिक्त उनके प्रतिरोध के भाव को दूर करना भी कुछ सहज नहीं है। ऐसे स्थान में धैर्य और कौशल से काम लेना चाहिए। जिस भाँति हो सके उनको यह निश्चय करा देना चाहिए कि शिक्षक जो कुछ कहते हैं वह उनके ही लाभ के लिये है। यदि एक बार शिक्षक पर उनको श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न हो जायगा तो शिक्षकों का काम बहुत सहज हो जायगा।

युरोप के देशों में सर्वत्र ऐसे स्कूल हैं जिनमें माताओं को गर्भरक्षा और बाल-पोषण की शिक्षा मिलती है। प्रतिवर्ष सहस्रों स्त्रियाँ इससे लाभ उठाती हैं। इसी प्रकार के स्कूल हमारे देश में भी होने चाहिएँ। इन स्कूलों की पाठविधि लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए बहुत विचार कर आवश्यकतानुसार बनानी चाहिए। इंग्लैंड के Wimbledon Mothers of Babies. Welfare Society की पाठविधि नीचे उद्धृत की जाती है। इन स्कूलों में इसी प्रकार की पाठ विधि होनी

चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि यही हो, इसमें हेर फेर करके जैसी ठीक समझें बना सकते हैं—

१. माता का स्वास्थ्य (१) गर्भावस्था में

(२) बच्चे को दूध पिलाने के समय में।

वस्त्र — व्यायाम, विश्राम

भोजन — मद्य की मनाही

प्रदर्शन—

२. बच्चों की देख-रेख (१) स्तन दूध पिलाने के समय में।

(२) दूध छुड़ाने के समय में।

प्रदर्शन—जव का पानी और जई का पानी बनाना।

३. ऊपरी भोजन (१) आटे के भोजन से हानि।

मीठा जमा हुआ दूध।

मलाई उतारा हुआ जमा दूध।

प्रदर्शन—बुरे और उत्तम दूध के डिब्बे—उचित और अनुचित दूध पिलानेवाली शीशीयाँ।

४. ऊपरी भोजन (२) दूध की सावधानी—उसका शुद्ध करना

शीशी की स्वच्छता और उसकी शुद्धि।

प्रदर्शन—शीशियों को उचित प्रकार रखना और उनको शुद्ध करना।

५. स्वच्छता

स्नान—ठंढा स्पंज करना—

नाभी, पाँव, बाल, शरीर के चर्म इत्यादि की देख रेख।

प्रदर्शन—चटकी हुई खाल के लिये उबला हुआ श्वेत सार।

६. बच्चे और बालकों के वस्त्र—

उष्णता और हलकापन

ढीलापन जिससे अंगों की गति भली प्रकार हो सके।

प्रदर्शन—आदर्श वस्त्र

७. बच्चों के दाँत निकलना—दांतों की सावधानी—नेत्रों की ओर ध्यान।

प्रदर्शन—नेत्रों को धोना—बोरिक जल।

८. १ से ५ वर्ष तक की आयु के बच्चों का भोजन

नियत समय का भोजन।

भोजन को चबाना।

भोजन से भरे हुए मुँह पर जल पीने से हानि।

प्रदर्शन—

९. रोग

गरमी के दस्त—कारण, व्याख्या, रोकने के उपाय।

चिकित्सा—अंडी का तेल।

प्रदर्शन—अलबूमन जल—आरारोट

१०. रोग—शूल दरद, मुँह आ जाना

कब्ज होना—जैतून का तेल व मगनेशिया

(Olive oil and magnesia)

खाँसी और जुकाम—glycerine—

कुकुर खाँसी

प्रदर्शन—पुल्टिस और सेक—खाँसी की केतली।

११. संक्रामक रोग—चिह्न व स्वरूप

चेचक

खसरा

अरुणज्वर (Scarlet fever)

डिफथीरिया

कुकुर खाँसी

प्रदर्शन—रोगी की शय्या तय्यार करना—भाप की केतली

१२. बच्चों को उत्तम आदतें सिखाना और उनके आचार व्यवहार।

वस्त्रों का प्रयोग—भिन्न शय्या—नियमित भोजन।

१३. गृह की देख-रेख—

स्वच्छता—मक्खियों से हानि-कूड़ा इत्यादि फेंकने का स्थान-मलस्थान-जलपात्र इत्यादि।

प्रदर्शन—दूध के पात्रों के ढकने —

१४. वीजन—

सूर्य प्रकाश की महत्ता—शुद्ध वायु और व्यायाम।

बच्चे का बाहर सुलाना।

प्रदर्शन—वीजन प्रबंध—तीव्र वायु से बचाव।

१५. माता—

उसके स्वास्थ्य का सारे गृह पर प्रभाव—वस्त्र—दाँतों की सावधानी—विश्राम—बच्चों को जल्दी ही सुला देना चाहिए।

प्रदर्शन—साधारण और सस्ते लाभदायक भोजन।

माताओं को शिक्षा देने का काम केवल स्कूलों के द्वारा पूरा नहीं हो सकता। ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत होगी जो वहाँ पर कभी भी न आयँगी। इसलिये यह आवश्यक है कि स्वास्थ्य निरीक्षक नियुक्त किए जायँ जिनका यह काम हो कि वे प्रत्येक घर में जाकर देखें कि माता और बच्चे का स्वास्थ्य कैसा है और यदि उसमें कोई त्रुटि देखें तो उनको उचित सलाह दें।

युरोप अमरीका इत्यादि देशों में प्रति नगर में बाल-रक्षिणी समितियों की ओर से स्वास्थ्य निरीक्षक नियुक्त हैं। ये शिक्षित स्त्रियाँ हैं जिनको उनके काम के लिये विशेष शिक्षा दी गई है। प्रत्येक निरीक्षक का, जिसको Health Visitor कहा जाता है, एक व दो या तीन मुहल्ले सुपुर्द हैं जो उसका वार्ड कहलाता है। निरीक्षक अपने वार्ड को प्रत्येक स्त्री की दशा को भली भाँति जानता है। उसे मालूम रहता है अथवा मालूम रखना पड़ता है कि कौन स्त्री गर्भवती है, के मास का गर्भ है, प्रसव होने की कब संभावना है, किस स्त्री के बालक हो चुका है अथवा कौन बच्चा बीमार है इत्यादि। उसी के

अनुसार उसको उसके गृह पर जाकर अवस्था के अनुसार शिक्षा देनी होती है; यदि माता के भोजन में त्रुटि है तो उसे बताना होता है कि उस अवस्था के लिये कौन सा उचित भोजन है अथवा उसे किस प्रकार बनाना चाहिए; यदि बच्चा बीमार है तो उसके लिये जो कुछ भी आवश्यक है उसे स्वयं करना होता है। उसे रोगी बच्चे की सूचना उस वार्ड के डाक्टर को देनी होती है जो घर पर जाकर बच्चे को देखता है और यदि उचित समझता है तो उस बच्चे के किसी अस्पताल में भेज देता है। स्वास्थ्य निरीक्षक पर एक प्रकार से इस वार्ड की माताओं और बालकों के स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व होता है।

जहाँ जहाँ भी यह स्वास्थ्य निरीक्षण की प्रणाली काम में लाई गई है वहाँ इससे बहुत उत्तम और संतोषजनक परिणाम निकले हैं। अनपढ़ और गरीबों को सहायता देने के लिये आवश्यक है कि उनके घर पर पहुँच कर कौशल से उनको इस बात का विश्वास दिला दिया जाय कि उनको सचमुच सहायता देने के लिये ही उद्योग किया जा रहा है। स्वास्थ्य-निरीक्षक का काम कुछ साधारण नहीं है। पहले लोग उसे पहिचानेंगे नहीं। बहुधा लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखेंगे, उसका आना उन्हें भला न मालूम होगा। ऐसे स्थानों में कार्य की सफलता निरीक्षक के चातुर्य और कौशल पर निर्भर करती है। उसको संतोष और धैर्य के साथ अपने लक्ष्य को सामने

रखकर काम करना चाहिए। गरीबों के हृदय में विश्वास उत्पन्न करना इतना कठिन नहीं है। जब उनको यह मालूम हो जाता है कि अमुक व्यक्ति वास्तव में हमारा शुभचिन्तक है और हमारी भलाई करने का उद्योग करता है तब वे उस को पूजने लगते हैं। यदि निरीक्षक किसी एक स्थान पर भी अपने को लाभदायक प्रमाणित कर सकेगा तो अवश्य ही दूसरे लोग उससे सहायता माँगने के लिये आयेंगे; दुःख में उसे अपना साथी समझेंगे। इसलिये निरीक्षक को धैर्य के साथ उचित स्थान से काम आरंभ करना चाहिए।

युरोप के देशों के अनुसार हमारे देश में भी प्रत्येक नगर में निरीक्षण प्रणाली प्रचलित होनी चाहिए। नगर के सब निरीक्षक स्वास्थ्य-अध्यक्ष के नीचे होने चाहिएँ जो उनके काम का वितरण करें, उनके वार्ड बाँटे और उनको उचित काम की शिक्षा दे। स्वास्थ्य अध्यक्ष के सुपुर्द म्युनिसिपेलिटी इत्यादि का कोई काम न होना चाहिए। उसका काम केवल माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य की देख भाल होनी चाहिए अथवा यों कहना चाहिए कि वह स्वास्थ्य निरीक्षकों का सब से बड़ा अफसर होगा। उसका काम होगा कि वह स्वास्थ्य निरीक्षकों का प्रबंध करे और यह देखता रहे कि वे अपना काम ठीक प्रकार से कर रहे हैं। प्रत्येक निरीक्षक जब अपने वार्ड में कोई ऐसी बात देखे जिसके लिये उचित प्रबंध करना उसकी सामर्थ्य से बाहर है तब उसे उसकी रिपोर्ट अध्यक्ष को करनी

चाहिए जो तुरंत ही उसका उचित प्रबंध करेगा। स्वास्थ्य-अध्यक्ष एक ऊँचे दर्जे का अफसर होना चाहिए जो एक पूर्णतया शिक्षित पदवी-प्राप्त डाक्टर हो जिसको बच्चों के बारे में पूरा पूरा अनुभव हो।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है निरीक्षक उच्च-शिक्षिता और उच्च भावों से युक्त स्त्रियाँ होनी चाहिएँ जिनको देश-सेवा का पूरा पूरा ध्यान हो। कुछ समय तक उनको अनुभवी दाइयों द्वारा शिक्षा दिलवानी आवश्यक है जिससे उनको गर्भशास्त्र संबंधी अथवा बच्चों के संबंध में सब आवश्यक बातें मालूम हो जायँ। लन्दन के नियमों के अनुसार केवल ऐसी स्त्रियाँ जिनमें निम्नलिखित गुण हों, स्वास्थ्य-निरीक्षक के काम पर नियुक्त की जा सकती हैं।

१. यदि वह मेडिकल एक्ट (Medical Act) के अनुसार एक पदवी प्राप्त डाक्टर है।

२. अथवा वह किसी साधारण अस्पताल में तीन साल तक काम करके किसी बड़े अस्पताल में नर्स की भाँति नियुक्त होने के लिये आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर चुकी है।

३. अथवा यदि वह Midwives Act 1902 के अनुसार दाई की भाँति काम करने का अधिकार प्राप्त कर सकती है।

४. अथवा यदि वह किसी अस्पताल में कम से कम छः महीने तक काम करके, ऐसे विषयों में जैसे स्वास्थ्य-विज्ञान इत्यादि में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् Royal Sanitary

Institute for Health Visitors and School Nurses अथवा National Health Society या किसी अन्य परिचित बोर्ड से सर्टिफिकेट या डिप्लोमा प्राप्त कर चुकी है।

५. अथवा वह किसी स्वास्थ्य अध्यक्ष के नीचे रह कर कुछ समय तक निरीक्षक का काम कर चुकी है।

यह खेद की बात है कि हमारे देश में न कोई Medical Act है और न Midwives Act है जिससे अशिक्षित लोग भी डाक्टर बन जाते हैं और प्रत्येक नीच जाति की स्त्री दाई का काम करने लगती है। इससे जो परिणाम होता है वह पहले ही वर्णन किया जा चुका है। सहस्रों स्त्रियों की जान इन दाइयों के कारण जाती है।

हमारे देश में भी युरोप के देशों की भाँति शिक्षित स्वास्थ्य-निरीक्षकों से काम लेना चाहिए। उनको असली शिक्षा तो उस समय मिलती है जब वे गरीबों के घरों पर जाकर काम करते हैं। वहां पर वे यह सीखते हैं कि किस प्रकार काम करना चाहिए और किस समय पर किस प्रकार की शिक्षा देने से उत्तम प्रभाव पड़ेगा।

निरीक्षक का काम उस समय से आरंभ होता है जब से उसके वार्ड की कोई भी स्त्री गर्भ धारण करती है। उसी समय से निरीक्षक उसके स्वास्थ्य के लिये उत्तरदायी हो जाता है। उसको चाहिए कि वह भली भाँति उसकी दशा की खबर रक्खे। स्त्री की अवस्था के अनुसार जैसा भोजन

उसके लिये आवश्यक है जिससे उसके शरीर की पुष्टि हो, उसके लिये आवश्यक व्यायाम इत्यादि की निरीक्षक को शिक्षा देनी चाहिए। साथ ही उसे उसके भावी जीवन के लिये भी तैयार करना निरीक्षक का काम है। उसको बताना चाहिए कि बच्चे को किस प्रकार स्नान कराना चाहिए; बच्चे को स्वच्छ रखने का क्या प्रबंध होना चाहिए, बच्चे का भोजन कैसा होना चाहिए; बीमार होने पर क्या करना चाहिए, बच्चे को उत्तम आदतें किस प्रकार सिखाई जा सकती हैं इत्यादि बातों की शिक्षा इसी समय से प्रारंभ कर देनी चाहिए। नव मास तक बराबर इसी प्रकार उसके स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए और उसे शिक्षा देने का भी उद्योग करना चाहिए।

बच्चे के उत्पन्न होने पर निरीक्षक का काम और भी बढ़ जाता है। उसको बच्चे और माता दोनों की रक्षा करनी होती है। उसको देखना होता है कि बच्चा भी उत्तम रीति से पाला जाय और माता का स्वास्थ्य भी न गिरने पावे, क्योंकि इस समय माता के स्वास्थ्य पर ही बच्चे का स्वास्थ्य निर्भर करता है। इसलिये उनको ऐसे भोजन करने की सलाह देनी चाहिए जिससे उनको दूध अधिक उत्पन्न हो और बच्चे को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। सब से मुख्य काम यही है कि उसको बच्चे के खिलाने पिलाने की ठीक ठीक शिक्षा दी जाय। किन्तु केवल शिक्षा ही के पश्चात

निरीक्षक को संतुष्ट न हो जाना चाहिए। उसे स्वयं देखना चाहिए कि उसकी आज्ञाओं का पूरा पूरा पालन होता है या नहीं।

यदि माता स्वयं बच्चे को दूध पिलाने के योग्य है तो निरीक्षक को इस बात पर जोर देना चाहिए कि कम से कम छः मास तक स्वयं माता ही बच्चे को दूध पिलाये। आज कल धनाढ्य घरों में यह कुछ रीति सी चल गई है कि माताएँ बच्चों को दूध पिलाना पसन्द नहीं करतीं। यह माता और बच्चे दोनों के लिये बहुत हानिकारक है। निरीक्षक को चाहिए कि ऐसे स्थानों में सब हानि लाभ भली प्रकार समझा कर माता को इस बात के लिए तैयार कर दे कि वह अपने बच्चे को स्वयं ही दूध पिलावे।

निरीक्षकों के पास छपे हुए कार्ड रहने चाहिएँ जिन पर वे सब बातें छपी हुई हों जो माता को करनी चाहिएँ। इनका कागज मोटा होना चाहिए जिससे उनको डोरा बाँध कर लटकाया जा सके। ये पत्र मुख्यतया दो प्रकार के होने चाहिएँ। एक पत्र पर स्तन-पोषित-बच्चे के संबंध में सब बातें संक्षेपतया लिखी रहनी चाहिएँ—किस प्रकार उसको दूध पिलाना चाहिए, किस समय पर पिलाना चाहिए इत्यादि। दूसरे पत्र पर उन बच्चों के लिए बातें होनी चाहिएँ जो माता का दूध छोड़ चुके हैं अथवा जिन्हें ऊपर का दूध मिलता है। साथ में कुछ और भी पत्र होने चाहिएँ।

एक पत्र पर गर्भवती माता के लिये उसके स्वास्थ्य-रक्षा इत्यादि का उपदेश होना चाहिए और दूसरा उन बच्चों के संबंध में हो जो अधिक आयु के हो चुके हैं। जब निरीक्षक अपने काम पर जाय तो ये सब पत्र उसके पास रहने चाहिएँ। इनमें से जैसी जहाँ आवश्यकता हो वैसा ही पत्र वह वहाँ दे दे। यदि अभी बच्चा नहीं हुआ है तो उसे गर्भवती स्त्री के स्वास्थ्य-विधानवाला पत्र वहाँ देना चाहिए। यदि बच्चा माता का दूध पीता है तो वहाँ वैसे ही पत्र की आवश्यकता है।

इन पत्रों द्वारा बहुत कुछ लाभ पहुँचाया जा सकता है विशेषकर जब कि पत्र में लिखी हुई सब बातें पूरी तरह समझा दी जायँ। यदि निरीक्षक सब बातों का कारण उचित रीति से समझा देगा तो अवश्य ही बहुत सी स्त्रियाँ उन सब बातों को काम में लाने के लिये तैयार हो जायँगी।

इस प्रकार के दो पत्रों को जो County of Salford में प्रचलित हैं, नीचे उद्धृत किया जाता है—

County Borough of Salford.

Directions for the management of Infants.

(बच्चों के प्रबंध संबंधी कुछ नियम)

Breast fed (स्तन-पोषित)

स्नान और वस्त्र।

बच्चों को एक बार प्रति दिन गर्म पानी से शरीर को मल कर स्नान कराना चाहिए।

उनके वस्त्र विशेष कर रात्रि को, हलके और काफ़ी गरम होने चाहिएँ। वस्त्र फ़लालेन के या ऊनी होने चाहिएँ, मोज़े टाँगों को भली भाँति ढके रहें, वस्त्र की बाहु ढीली होनी चाहिए और गर्दन पर भी वस्त्र ढीला रहना चाहिए।

वायु और व्यायाम।

शुद्ध वायु की बहुत आवश्यकता है। जब ठंढ कम हो या गरमी हो तो उनको अवश्य बाहर घुमाना चाहिए। दिन में कम से कम दो बार कमरे की सब खिड़कियाँ पूरी तरह खोल देनी चाहिएँ।

निद्रा।

बच्चों को बहुत नींद की आवश्यकता है। तीन वर्ष की आयु तक दोपहर का नियत समय पर सोना आवश्यक है। उनको साधारण चारपाई ही पर सोने की आदत डालो, गोदी में लेकर सुलाने की आदत बुरी है। जहाँ तक हो सके बच्चे को ऐसी आदत डालनी चाहिए कि वह स्वयं ही चारपाई पर सो जाय।

दूध पिलाना।

छः व सात महीने तक माता का दूध ही बच्चे के लिये आदर्श भोजन है। यदि माता के स्तनों में काफी दूध है तो और किसी प्रकार के भोजन की आवश्यकता नहीं है।

प्रथम छः सप्ताह में बच्चे को दिन में प्रति दो घंटे और रात्रि को प्रति चार घंटे पर दूध देना चाहिए।

छः सप्ताह से तीसरे महीने के अंत तक प्रति २½ घंटे पर दिन में और एक बार रात्रि में दूध पिलाना चाहिए।

तीन से छः महीने तक दिन में प्रति तीन घंटे पर।

छः से सातवें मास तक दिन में प्रत्येक ३½ घंटे पर दूध पिलाना चाहिए। उसके पश्चात् दूध को छुड़ाना आरंभ कर देना चाहिए और नवें महीने तक बिलकुल छुड़ा देना चाहिए।

बारहवें महीने के पश्चात् बच्चे को कभी भी दूध नहीं पिलाना चाहिए। ऐसा करने से माता और बच्चा दोनों कमजोर होते हैं।

माताओं को Malt liquors (जिसमें जौ और मद्य मिला रहता है) अपने दूध को बढ़ाने के लिये कभी भी प्रयोग न करना चाहिए।

दूध छुड़ाना।

जब बच्चा सात मास की आयु पर पहुँच जाय तब उसे पाँच बार दिन में भोजन मिलना चाहिए। तीन बार दूध को बिस्कुट या जई से गाढ़ा करके देना चाहिए और दो बार शुद्ध दूध होना चाहिए। नवें मास से अंडा या मांस का रस भी दिया जाना चाहिए।

जुलाई अगस्त और सितम्बर के महीनों में बच्चों को दूध न छुड़ाना चाहिए क्योंकि इन दिनों में उनको दस्त लगने का बहुत डर रहता है। छोटे बच्चों को आटे की बनी हुई

वस्तुएँ, आरारोट, साबूदाना, या ऐसी ही दूसरी वस्तुएँ न देनी चाहिएँ। दो बरस से नीचे की आयु वाले बच्चों को "वही जो स्वयं खाते हैं" देना बहुत भूल है।

यदि बच्चा रोवे तो यह न समझना चाहिए कि वह भूखा है। अधिक खाने से भी बच्चा रो सकता है।

माताओं को स्तन और स्तनमुखों को स्वच्छ रखना चाहिए; प्रत्येक बार खिलाने के पश्चात् बच्चे का मुँह शुद्ध जल से भली भाँति धो देना चाहिए। इससे मुँह की बीमारियाँ नहीं होतीं।

Town Hall, Salford. C. H. TATTERSALL
February 1914. Medical officer of Health.

County Borough of Salford.

Directons for the management of Infants.

Artificially fed.

(ऊपर का दूध पीनेवाले)

स्नान और वस्त्र।

बच्चों को प्रति दिवस एक बार गरम पानी से शरीर को मल कर स्नान कराना चाहिए।

उनका वस्त्र हलका और गरम होना चाहिए और रात्रि के समय विशेष कर बच्चों का ध्यान रखना चाहिए।

वस्त्र फलालेन या ऊन का होना चाहिए। मोजों से टाँगें

भली भांति ढकी रहनी चाहिएँ। वस्त्रों की वाहु ढीली होनी चाहिए और गला भी ढीला होना चाहिए।

वायु और व्यायाम।

शुद्ध वायु की बहुत आवश्यकता है। जब मौसिम ठीक हो तो उनको बाहर ले आना चाहिए। कमरे की खिड़कियों को दिन में कम से कम दो वार पूरी तरह खोल देना चाहिए।

निद्रा।

बच्चों को निद्रा की बहुत आवश्यकता होती है। तीन वर्ष तक उनको दोपहर को नियत समय पर सोना आवश्यक है। उनको स्वयं ही चारपाई पर सोने की आदत डालनी चाहिए, गोदी में लेकर सुलाने की आदत बुरी है। जहाँ तक हो सके ऐसी आदत डालनी चाहिए कि बच्चे को किसी दूसरे के पास बैठाने की भी आवश्यकता न हो।

भोजन।

यदि बच्चे को माता का दूध न मिलकर ऊपर का भोजन मिलता है तो उसमें बहुत सावधानी की आवश्यकता है। ऐसे बच्चे के लिये सब से उत्तम भोजन में गौ का दूध है जिसमें नीचे लिखे हिसाब से जल और थोड़ा सा शक्कर मिला देना चाहिए—

छः सप्ताह तक—२ भाग जल, १ भाग दूध, शक्कर हलका सा मीठा करने के लिये—दिन में प्रत्येक दो घंटे पर ४ बड़े

चम्मच भर (Table-spoonful) और रात्रि को चार घंटे पर चार चम्मच भर यह दूध देना चाहिए।

छः सप्ताह से तीन मास—१ भाग जल, १ भाग दूध—८ बड़े चम्मच भर प्रति २½ घंटे दिन में और एक बार रात्रि में।

तीन से सात मास—२ भाग दूध, १ भाग जल—८ बड़े चम्मच दिन में प्रति तीन घंटे पर।

सात मास की अवस्था के पहुँचने पर बच्चे को पाँच बार भोजन मिलना चाहिए। तीन बार दूध में बिस्कुट या जई या डबल रोटी मिला कर दूध देना चाहिए और दो बार बारह बड़े चम्मच केवल दूध देना चाहिए। नौ महीने से एक अंडा या माँस का रस आरंभ कर देना चाहिए।

दूध को भली प्रकार गरम करके एक स्वच्छ और शुद्ध काँच के बरतन में ढक कर रख देना चाहिए। जब बच्चे को दूध देना हो तो उसमें से एक बार के लिये पर्याप्त दूध निकालना चाहिए। बच्चे को पिलाने से पहले दूध को बोतल में भर कर पानी में रख कर गरम कर लेना चाहिए।

बच्चों को खट्टा दूध कभी नहीं देना चाहिए। दूध को सूंघने से तुरंत ही इस बात का पता लग सकता है। यदि बच्चा रोवे तो यह न समझना चाहिए कि वह भूखा है। अधिक खाने से भी बच्चा रो सकता है।

जमा हुआ दूध (Condensed Milk), जिस दूध से मलाई निकाल ली गई है अथवा ऐसे भोजन जिनमें ताजे दूध

की आवश्यकता नहीं होती बच्चों को कभी नहीं देना चाहिए क्योंकि इनसे रिकेट्स या स्कर्वी रोगों के होने का डर रहता है।

बोतल।

दूध पिलाने की बोतल नाव के आकर की होनी चाहिए जिसके मुँह पर रबड़ का निपिल लगा हो। यह भली प्रकार से साफ की जा सकती है। रबड़ की नलिकाओं (Rubber tubes) से काम न लेना चाहिए। प्रत्येक बार दूध पिलाने के पश्चात् बोतल और निपिल को पूरी तरह से धो देना चाहिए और इसके पश्चात् दोनों को एक ठंढे पानी से भरे हुए बरतन में रखकर आग पर रख देना चाहिए जिससे बोतल पूरी तरह शुद्ध हो जाय।

छोटे बच्चों को आटे की बनी हुई वस्तुएँ, आरारोट, साबूदाना या दूसरी ऐसी ही वस्तुएँ "जो स्वयं खा सकते हैं" न देनी चाहिएँ।

यदि बच्चे का मुँह दूध पिलाने के पश्चात् शुद्ध गरम जल से भली भाँति धो दिया जाय तो मुँह की बीमारी होने का बहुत कम डर रहता है।

Town Hall Salford. C. H. TATTERSALL.

February 1914 Medical officer of Health.

ऊपर के दोनों पत्र केवल नमूने की भाँति दिए गए हैं। और आवश्यकता के अनुसार उनमें भिन्नता करके हम काम में ला सकते हैं। इसी प्रकार के और पत्र भी होने चाहिएँ,

जिनको निरीक्षक उन गृहों पर जहाँ वह निरीक्षण करने जाय, अवस्था के अनुसार दे दे। इनसे निरीक्षक के काम में बहुत सहायता मिलेगी।

जहाँ जहाँ यह निरीक्षण प्रणाली काम में लाई गई है वहां ही इसके परिणाम बहुत अच्छे हुए हैं। सेफोर्ड में, जहाँ के पत्रों की प्रति ऊपर उद्धृत की गई है निरीक्षण प्रणाली १८९९ में प्रचलित की गई थी। उस समय तक बाल-मृत्यु-संख्या बहुत अधिक थी और उससे पहले कई वर्ष तक एक सी रही थी। जब से यह प्रणाली आरंभ की गई तब से बराबर मृत्यु-संख्या कम होती चली गई, यहाँ तक कि सन् १९२० में केवल ९७ रह गई। नीचे लिखें अंकों से इसका ठीक ठीक पता लग जायगा।

बाल-मृत्यु-संख्या	पाँच	वर्ष	में	१८९३—	९७—२०७	थी
,, ,,	,,	,,	,,	१८९८—१९०२—१९९		,,
,, ,,	,,	,,	,,	१९०३—१९०७—१६२		,,
,, ,,	,,	,,	,,	१९०८—१९१२—१४२		,,
,, ,,	,,	,,	,,	१९१३—१९१७—१२३		,,
,, ,,	,,	,,	,,	१९१६—१९२०—१०७		,,
,, ,,	,,	,,	,,	१९२० ——	९७	,,

निरीक्षण के साथ में और भी बहुत सी उन्नति बराबर होती रही। स्वास्थ्य-प्रबंध उत्तम किया गया—नगर के कूड़े इत्यादि को बाहर निकाल देने का प्रबंध भी उत्तम किया

गया, जिनका निस्संदेह बालस्वास्थ्य पर अवश्य ही बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। किन्तु इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि जितना उत्तम परिणाम निरीक्षण प्रणाली से निकला है उतना किसी दूसरे प्रबंध से नहीं हुआ। लन्दन, बर्मिंघाम या दूसरे स्थनों में भी ऐसे ही परिणाम निकले हैं।

हमारे देश में अभी तक इसकी ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। किसी किसी स्थान पर कुछ उद्योग हो रहा है किन्तु वह ऐसा ही जैसे मरुभूमि में जल के कुछ विन्दु। उससे वांछित फल नहीं निकल सकता। इसके लिये हमें चाहिए कि प्रत्येक प्रांत के प्रत्येक नगर में निरीक्षण प्रणाली को प्रचलित करके धैर्य के साथ उसके फल की प्रतीक्षा करें।

यह पहले लिखा जा चुका है कि हमारे देश में प्रसव-काल में कितनी स्त्रियों की मृत्यु होती है। इसका मुख्य कारण हमारे यहाँ की अशिक्षित दाइयाँ हैं जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है, जिनको किसी बात का तनिक भी ज्ञान नहीं होता। सहस्रों स्त्रियां प्रसूति ज्वर में इन दाइयों की ही कृपा से अपनी जान खोती हैं और साथ में कुछ दिनों के पश्चात् उनका नवजात शिशु भी उनके ही मार्ग का अनुसरण करता है।

इस अकाल मृत्यु से बचने का केवल यही उपाय है कि दाइयों को शिक्षा दी जाय और साथ में गवर्मेंट की ओर से Midwives Act बनाया जाय जिसके अनुसार केवल वेही

दाइयाँ, जिनके पास शिक्षा प्राप्त कर चुकने का सर्टिफ़िकेट है, प्रसवकाल में काम करने पायँ।

दाइयों की शिक्षा के लिये प्रबंध करना कुछ कठिन नहीं है, जहाँ बड़े बड़े स्कूल या अस्पताल हैं, जहाँ काफ़ी स्त्रियाँ प्रसव-रीति के लिये आती हैं, वहां उनकी शिक्षा का प्रबंध किया जा सकता है। उनके लिये एक विशेष पाठ-विधि तैयार करनी चाहिए जो उनको प्रसव-कार्य का विशेष कर पूर्ण ज्ञान करा दे। साथ में उनको साधारण नर्सों का भी कार्य सिखाना चाहिए जिससे यदि वे इस काम को अधिक पसन्द करें तो उसे करने के योग्य हो जायँ। तीन वर्ष तक उचित काम करने पर उनकी सर्टिफ़िकेट परीक्षा होनी चाहिए। जो कोई इसमें उत्तीर्ण हो जायँगे उनको सर्टिफ़िकेट मिल जाने पर कार्य करने का अधिकार होगा।

जिनके पास यह सर्टिफ़िकेट न हो उनको कदापि यह अधिकार न होना चाहिए। यदि कहीं पर ऐसा पता लगे कि अनधिकारी स्त्रियाँ भी यह काम करती हैं तो उनको एक्ट के अनुसार दँड मिलना चाहिए।

यह पता लगा लेना कि अनधिकारी स्त्रियाँ भी काम करती हैं, या नहीं कुछ कठिन नहीं है। म्युनिसिपेलिटी प्रत्येक जन्म और मृत्यु की सूचना रखती है। जहाँ कोई भी बच्चा जन्म लेता है तुरंत ही रजिस्ट्रेशन आफिस में उसका जन्म लिख लिया जाता है। कर्मचारियों को केवल इतना ही

ओर करना पड़ेगा कि जहाँ वह बच्चा उत्पन्न होने की सूचना मँगाते हैं वहां वह यह खबर मंगा लें कि उस बच्चे के जन्मते समय कौन सी दाई काम कर रही थी। यदि वह अनधिकारी है तो तुरंत उस पर अभियोग चलाना चाहिए।

आरंभ में अवश्य ही कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। हमारे देश में शिक्षा की कमी के कारण अन्ध विश्वास की जड़ बड़ी गहरी जमी हुई है। इसको दूर करने में बहुत कुछ कठिनाइयाँ पड़ेंगी। संभव है कि अन-भिज्ञ लोक-सम्मति इसके विरुद्ध हो जाय किन्तु दृढ़ रहने से अंत में सब शांति हो जायगी। इसके अतिरिक्त जब लोग देखेंगे कि शिक्षित दाइयों का काम दूसरी दाइयों से बहुत अच्छा है, जहां वह काम करती हैं वहां ऐसे रोग इत्यादि नहीं होते तो स्वयं ही उनको बुलायेंगे।

यदि हमको उन सहस्रों स्त्रियों की जान बचानी है जो केवल दाइयों की मूर्खता या प्रसव की कुरीतियों का शिकार बनती हैं तो आधुनिक अशिक्षित दाइयों को जिस प्रकार भी हो हटाना होगा और साथ में प्रसवकाल में अन्ध-परम्परा से जो रीतियाँ होती आई हैं उनको बन्द करके उचित वैज्ञानिक रीतियों का प्रचार करना होगा। जिस गति से हम इस ओर इस समय चल रहे हैं उससे आशातीत फल कभी भी नहीं हो सकता।

दाइयों के इस प्रबंध के साथ ही साथ जहां तहां

Maternity Homes स्थापित होने चाहिएँ। यह अस्पताल की तरह से छोटे छोटे स्थान होते हैं जहां १५ या २० रोगियों के रखने का प्रबंध होता है। युरोप के देशों में इनका काफी प्रचार है।

प्रत्येक होम में एक अनुभवी लेडी डाक्टर रहनी चाहिए अथवा वे शिक्षित दाइयां जो इस काम को कई वर्षों से कर रही हैं यहाँ नियुक्त की जा सकती हैं। जो गरीब स्त्रियां अपने गृह पर प्रसव का खर्चा नहीं उठा सकते हैं वे यहाँ आकर प्रसव करवा सकती हैं।

ग़रीब लोगों को यह कठिन होता है कि वे प्रसवकाल में माता के भोजन का पूर्ण प्रबंध कर सकें अथवा वैसी स्वच्छता रख सकें जैसी कि प्रसव-काल पर आवश्यक होती है। ऐसे लोगों के लिये यह बहुत ही उचित स्थान है। यहां पर भोजन वस्त्र इत्यादि का होम की ओर से प्रबंध रहता है जिससे ग़रीब लोग सारे खर्च से बच जाते हैं। सारी क्रिया पूरी वैज्ञानिक रीति पर की जाती है।

इसी प्रकार का प्रबंध अस्पतालों में भी होता है। किन्तु जनता में यह प्रबंध अधिक सर्वप्रिय नहीं हुआ है। जहां बड़े बड़े अस्पताल हैं और लेडी डाक्टर भी रहती हैं वहां तो अवश्य ही कठिनता के समय में लोग पहुँच जाते हैं। किन्तु ऐसे बड़े बड़े अस्पताल केवल बड़े ही स्थानों में हैं, छोटे नगरों में नहीं हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन

Maternity Homes को सर्वप्रिय बनाया जाय। बड़े अस्पतालों के बनाने और उनका प्रबंध करने में बहुत खर्चा पड़ता है किन्तु इन होम्स में कुछ ज़्यादा खर्चा नहीं होता और गरीब लोग पूरा लाभ उठा सकते हैं। युरोप में इनकी संख्या बराबर बढ़ती जा रही है क्योंकि इनको बहुत उपयोगी पाया गया है।

ऊपर कहा जा चुका है कि कंगाली इन सब आपत्तियों की जड़ है। प्रत्येक रोगी को यह कह देना कि तुम दूध पिओ बहुत आसान है। इसी प्रकार गर्भवती स्त्रियों के लिये यह उपदेश देना कि तुम अमुक वस्तु खाओ, दूध पिओ इत्यादि बहुत सहज है। किन्तु जिनको रूखे सूखे टुकड़ों ही से अपना पेट भरना कठिन होता है वे लोग अधिक मूल्य की वस्तुएँ क्योंकर खा सकते हैं। यह प्रश्न केवल हमारे ही देश में नहीं है किन्तु सारे संसार में है। हां इतना अंतर है कि जहां दूसरे देशों में सरकार की ओर से गरीबों को सुविधाएँ पहुँचाने और उनकी आवश्यकताएँ दूर करने का प्रयत्न किया जाता है, वहां हम लोगों को अपने भाग्य पर ही रहना पड़ता है।

इंग्लैंड में बहुत सी समितियां हैं जिनका भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न नाम है। कहीं इनको Child Welfare Centre कहते हैं, कहीं Child Helping League कहा जाता है। दूसरे देशों में भी इसी प्रकार की संस्थाएँ हैं। इन समि-

सियों के संबंध में और छोटी छोटी संस्थाएँ हैं जिनको Infant Consultations कहा जाता है। कहीं कहीं पर ये बिलकुल स्वतंत्र हैं अर्थात् किसी बड़ी समिति का भाग नहीं हैं। दूसरे कार्यों के साथ में जो एक सब से बड़ा कार्य इन केन्द्रों में किया जाता है वह गर्भवती माताओं और बच्चों को दूध पिलानेवाली गरीब माताओं को भोजन देने का है। दिन में एक बार ये भोज होते हैं। सप्ताह में चार या पाँच या छः दिन ऐसे भोजों का प्रबंध है। इन भोजों में ऐसी वस्तुएं रहती हैं जो माताओं के लिये गुणकर और पुष्टिकारक हों किन्तु सस्ती हों। इनके लिये नाम मात्र मूल्य भी लिया जाता है। दो, चार वा छः पैसा इनका मूल्य होता है। जो स्त्रियाँ बहुत गरीब होती हैं और मूल्य नहीं दे सकतीं उनसे कुछ भी नहीं लिया जाता। स्त्रियां बहुत प्रसन्नता से इनका मूल्य दे देती हैं क्योंकि यह नाम मात्र होता है। कभी कभी ऐसा होता है कि कुछ स्त्रियाँ जिनकी आर्थिक दशा बहुत हीन नहीं होती आपस में चन्दा करके दूसरी स्त्रियों के भोज का मूल्य दे देती हैं।

इन भोजों का अभिप्राय यही होता है कि माता बच्चे को दूध पिलाने के योग्य हो और उसका स्वास्थ्य खराब न हो। वहां की जनता में यह प्रबंध बहुत ही सर्वप्रिय है क्योंकि यहाँ कम से कम दिन में एक बार उत्तम प्रकार से बनाया हुआ भोजन मिल जाता है। इस प्रबंध से जो लाभ होता है वह साफ जाहिर है।

हमारे यहाँ भी इसी प्रकार का कुछ प्रबंध होना चाहिए। गर्भकाल में उचित और पुष्टिकारक भोजन की बहुत आवश्यकता है। जो स्त्रियाँ बहुत गरीब हैं उनके भोजन के लिये सरकार अथवा अन्य समितियों की ओर से प्रबंध होना चाहिए। युरोप का सा भोज देना तो हमारे यहाँ अभी संभव नहीं मालूम होता। छुआ छूत इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि स्त्रियों का एक स्थान पर एकत्र होकर भोजन करना संभव नहीं प्रतीत होता। किन्तु फिर भी इसके लिये भी उद्योग करना चाहिए। यदि यह न हो सके तो उनके गृहों पर ही उचित वस्तुएँ भेजने का प्रबंध होना चाहिए।

सब नगरों में बाल-रक्षिणी सभाएँ स्थापित होनी चाहिएँ। भोज का काम इन्हीं के सुपुर्द होना चाहिए। इसके अतिरिक्त Infant Consultations के केन्द्र स्थान स्थान पर खोलने चाहिएँ। यहाँ पर प्रति सप्ताह या पन्द्रहवें दिवस उस वार्ड के बच्चों को तोला जाना चाहिए। एक डाक्टर भी ऐसे स्थानों पर नियुक्त होना चाहिए जो समय समय पर इनको देखता रहे। उसका कार्य केवल इतना ही होगा कि जहां वह देखे कि बच्चे का भार नहीं बढ़ रहा है तो भोजन इत्यादि के संबंध में माता को उपदेश दे। चिकित्सा का स्थान यह न होगा।

बच्चों के लिये प्रत्येक नगर में Day Nurseries होनी चाहिएँ। यह एक खंड के उत्तम प्रकार से बने हुए मकान

होने चाहिएँ जिनके साथ खुला हुआ स्थान भी हो, जहाँ पर बच्चे खेल सकें या जो छोटे बच्चे हैं उनको बाहर घुमाया जा सके। प्रत्येक ऐसी संस्था की अध्यक्ष एक अनुभवी मेट्रन (Matron) होनी चाहिए जो बच्चों के संबंध की सब बातों को भली भाँति समझती हो। उसके साथ में एक साधारण नर्स और एक नौकरानी रहनी चाहिए। प्रत्येक संस्था के लिये एक डाक्टर भी नियुक्त होना चाहिए जो समय समय पर बच्चों की दशा को देखे और यदि किसी बच्चे के लिये कोई विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता हो तो उसे पूरा करे।

इन संस्थाओं के मुख्य दो काम होने चाहिएँ। प्रथम तो यह कि जिन बच्चों की माता किसी विशेष कारण से, दिन में देख भाल नहीं कर सकती उनको यहाँ ले आया जाय। यहां पर मेट्रन और नर्स उन बच्चों को भली प्रकार से रखेंगी। दिन में बहुधा माताओं को, जिनके परिवार की आय बहुत कम होती है, काम पर जाना पड़ता है। वे अपने बच्चों को दूसरों की देख रेख में छोड़ जाती हैं जो बहुधा उन पर कुछ अधिक ध्यान नहीं देते। इससे बच्चे की अवस्था हीन हो जाती है। युरोप के देशों में तो यह बहुत होता है क्योंकि वहां की स्त्रियों की एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी है जिनको प्रतिदिन फैक्टरियों इत्यादि में काम करना पड़ता है। बड़े नगरों में हमारे यहां भी यही हाल है। ऐसी माताओं के लिये यह स्थान बहुत उपयोगी है। प्रातःकाल अपने काम पर

आते समय वे बच्चों को यहां छोड़ सकती हैं और संध्या को जब वे काम से लौटें फिर बच्चों को अपने साथ लौटा कर ले जा सकती हैं। दिन भर बच्चों की देख रेख मेट्रन और नर्स द्वारा होती है जो उनको समय पर भोजन देती हैं, यदि वह वस्त्र गन्दे कर देते हैं तो उन्हें बदलती हैं अथवा और सब आवश्यकताओं को पूरा करती हैं।

दूसरा काम इन संस्थाओं का यह होता है कि वे प्रसव सम्बन्धी और बाल-पोषण सम्बन्धी ज्ञान को जनता में फैलावें। दूसरे स्थानों की अपेक्षा यहां पर यह कार्य करना सहज है। स्त्रियां स्वयं ही अपने बालकों को लेकर यहां आती हैं। आठवें या पन्द्रहवें दिवस कुछ समय के लिये यहां पर आने-वाली स्त्रियों को एकत्र करना कुछ कठिन नहीं है। उनके एकत्र होने पर मेट्रन उनको भली भाँति उपदेश दे सकती है।

गरीब और मध्य श्रेणी के लोगों को रहने के उत्तम स्थान बहुत कठिनाई से मिलते हैं। बड़े नगरों में तो मध्य श्रेणी के लोगों के मकान तंग गलियों के भीतर होते हैं जिनमें सूर्य का प्रकाश पहुँचना भी कठिन होता है। उनके बच्चों को खेलने के लिये उचित स्थान नहीं मिलता। दिन में ये बच्चे नर्सरी में भेजे जा सकते हैं जहां उनको भागने दौड़ने के लिये काफी स्थान मिलेगा और उनकी देखरेख भी होगी। वे दूसरे बच्चों के साथ मिलना सीखेंगे। उचित प्रबन्ध के द्वारा

उनको बहुत कुछ गुण सिखाये जा सकते हैं। युरोप में छोटे बच्चों के स्कूलों के साथ ही नर्सरी भी रहती है, जहां कुछ समय पढ़ने के पश्चात् बड़े बच्चे खेलने कूदने चले जाते हैं। यहां उनको परस्पर प्रेम, मेल, दया, सहानुभूति, दूसरों की सहायता करना इत्यादि गुण सिखलाये जा सकते हैं।

इन स्थानों में एक यह डर रहता है कि यदि किसी एक बालक को कोई फैलनेवाला रोग है तो वह दूसरे बालकों को भी हो जायगा। इसलिये बच्चों को लेते समय मैट्रन भली भाँति यह देख लेती है कि बच्चे को कोई ऐसा रोग तो नहीं है। यदि उसको किसी भाँति का रोग होता है तो बच्चे को नर्सरी में नहीं लिया जाता। कुछ स्थानों में यह किया जाता है कि जिस समय प्रातःकाल बच्चे आते हैं तो उनको पहले स्नान करा लिया जाता है और उनके वस्त्र बदल दिये जाते हैं।

यह नर्सरी प्रातःकाल ५$\frac{१}{२}$ या ६ बजे से सायंकाल ६ बजे तक खुली रहती है। भिन्न भिन्न संस्थाओं के नियम भी भिन्न होते हैं। एक महीने से दस वर्ष तक के बच्चों को इन स्थानों में लिया जाता है।

बच्चों के लिये विशेष अस्पताल होने चाहिएँ, जहां केवल बच्चों ही का इलाज होना चाहिए। इन अस्पतालों का प्रबंध साधारण अस्पतालों से कुछ भिन्न करना होगा। शिक्षित नर्सों की बहुत अधिक आवश्यकता होगी। यहां पर ऐसे

डाक्टर रखने होंगे जो बाल-चिकित्सा में निपुण हों। इन सब कारणों से इनका व्यय भी बढ़ जायगा।

ये अस्पताल बहुत आवश्यक हैं। नर्सरी या Infant Consultations में चिकित्सा का कुछ प्रबंध नहीं रहता। वहां जो डाक्टर समय समय पर निरीक्षण के लिये जाता है उसका कार्य केवल बच्चों के भोजन या स्वास्थ्य संबंधी उपदेश देने का है। ये संस्थाएँ बीमार बच्चों को इन अस्प-तालों में भेज देती हैं। और यही उचित भी है। यह खेद की बात है कि हमारे देश में ऐसे अस्पतालों का अभाव है।

बाल प्रदर्शिनी Baby shows अभी बहुत थोड़े दिनों से आरंभ हुई हैं। शिक्षा का यह एक उत्तम साधन है। युरोप में यह प्रदर्शिनी कई बार होती है। प्रत्येक नगर की भिन्न भिन्न समितियां यह प्रदर्शिनी करती हैं और उनके अपने भिन्न भिन्न नियम हैं।

ऐसे अवसर पर यह भली प्रकार पता लगाया जा सकता है कि नगर के बाल-स्वास्थ्य का क्या हाल है। हम सहज में जान सकते हैं कि जनता के किस भाग में बालकों की दशा गिरी हुई है अर्थात् वह मजदूर लोग हैं या मध्य श्रेणी के लोग हैं अथवा कोई विशेष जाति है या नगर का कोई विशेष मुहल्ला है जहां के बालक रोगी और दुर्बल हैं। उसके पश्चात हम यह पता लगा सकते हैं कि विशेष जाति या भाग में उस दशा के होने का क्या कारण है और फिर

हम उस दशा को दूर करने के लिये उचित प्रबन्ध कर सकते हैं।

इन प्रदर्शिनियों में उन बच्चों की माताओं को जिनका स्वास्थ्य बहुत उत्तम हो पुरस्कार भी मिलता है। किन्तु यदि पुरस्कार सबों को दिया जायगा तो उसका मूल्य जाता रहेगा और वह साधारण सी बात समझी जायगी। पुरस्कार केवल एक या दो दिया जाना चाहिए जिनके बच्चों का स्वास्थ्य सबसे उत्तम हो। उन बच्चों का फोटो भी लेना चाहिए और उसे समाचार पत्रों में भेज देना चाहिए। ऐसा करने से माताओं में स्पर्द्धा का भाव उत्पन्न हो जायगा और वे अपने बालक के स्वास्थ्य को उत्तम बनाने का पूर्ण प्रयत्न करेंगी। माताओं को जितना आनन्द अपनी संतान की प्रशंसा सुनने से होता है उतना किसी दूसरी बात से नहीं होता।

इन अवसरों पर शिक्षा का काम बहुत सहज में किया जा सकता है। मैजिक लैन्टर्न और फिल्म (Magic lanterns and films) की सहायता से लेक्चरों द्वारा वहां की उपस्थित स्त्रियों को बहुत कुछ बताया जा सकता है। साथ में छोटी छोटी पुस्तकें और पैम्फलेट भी वितरण करने चाहिएँ। समितियों की ओर से इस विषय की पुस्तकें जिन्हें माताएँ भली भाँति समझ सकें लागत के मूल्य पर बेचनी चाहिएँ।

दूध बच्चे के लिये बहुत ही आवश्यक वस्तु है। यह उसका स्वाभाविक भोजन है। बच्चे के उत्पन्न होने से पहले

माता के स्तनों में दूध आ जाता है और बच्चा उत्पन्न होते ही उस दूध को पीने लगता है। इसी दूध के द्वारा उसके शरीर की वृद्धि होती है। छः या सात मास तक यह दूध उसकी सब आवश्यकताओं को पूरा करता है किन्तु उसके पश्चात् बच्चे की आवश्यकताएँ इतनी बढ़ जाती हैं कि वह इस दूध द्वारा पूर्ण नहीं होतीं। इसलिये भोजन की दूसरी वस्तुओं का प्रयोग करना होता है।

कुछ दशाएँ ऐसी होती हैं जिनमें बच्चे को माता का दूध नहीं मिल सकता। माता रोगी होती है अथवा उसको काफी दूध नहीं होता। ऐसी अवस्था में बच्चे के भोजन का कुछ दूसरा प्रबंध करना होता है। बच्चे के लिए माता के दूध के पश्चात् गौ का दूध ही सब से उत्तम वस्तु है। किन्तु गौ और माता के दूध के संगठन में अन्तर होता है। इस कारण गौ के दूध में जल इत्यादि मिला कर उसको माता के दूध के समान ही करना होता है जिससे बच्चा उससे लाभ उठा सके।

बच्चे को संसार में किसी भी दूसरी वस्तु के द्वारा न इतना लाभ हो सकता है और न हानि पहुँच सकती है जितना कि दूध से। बाल-मृत्यु का कम और अधिक होना दोनों बहुत कुछ दूध पर निर्भर करते हैं। दूध का शुद्ध और अशुद्ध होना बच्चे के लिये बहुत महत्व की बात है। गरमियों के दस्त अधिकतर उन्हीं बच्चों को होते हैं जो गौ का दूध पीते हैं। दूध

ही के द्वारा मोतीभरा, अतिसार और दूसरे कठिन रोग कितने ही बार फैल चुके हैं। माता का दूध उन सब रोगों के जीवाणुओं से रहित होता है जो अशुद्ध दूध में मिले रहते हैं।

शुद्ध दूध पाने का प्रश्न दिन प्रति दिन कठिन होता जा रहा है। दूध में अशुद्ध वस्तुएँ तीन स्थानों पर मिल सकती हैं प्रथम जहां दूध निकाला जाता है; दूसरे उसको दूर के स्थानों में या घरों पर भेजने में; और तीसरे बेचने की दूकान या घर में।

गोशालाओं में जो अशुद्धियाँ दूध में मिल जाती हैं वे भयानक हो सकती हैं। जिन गौओं को कोई रोग होता है उनका दूध पीने के योग्य नहीं होता। गौओं की एक बड़ी संख्या ऐसी होती है जिनको राजयक्ष्मा का रोग होता है। जिनके स्तनों पर यह रोग होता है उनके दूध में इस रोग के जीवाणु उपस्थित रहते हैं। यही कारण है कि बच्चों को यह रोग—चाहे वह आँतियों का हो, चाहे गंडमाला का हो, चाहे वह अस्थियों का हो, हो जाता है। गौशालाओं के गन्दे रहने से वे जीवाणु जो गौ इत्यादि के मल में रहते हैं वायु द्वारा दूध में पहुँच जाते हैं। दूध निकालने वालों के हाथों में जो गन्दगी होगी वह अवश्य ही दूध में पहुँच जायगी। जब एक बार जीवाणु दूध में प्रवेश कर जाते हैं तो वे बड़ी तेजी से बढ़ते हैं।

बड़े बड़े नगरों में दूध बहुत दूर से आता है। कलकत्ते या बम्बई में दूध दो दो सौ मील की दूरी से रेल गाड़ियों में भर

कर लाया जाता हैं। गाड़ियों के डिब्बों में वह उसी स्थान में रख दिया जाता है जहाँ दूसरी वस्तुएँ रखी रहती हैं। जिन पीपों में दूध रहता है उनके ढक्कनों द्वारा बाहर का गर्दा या दूसरी वस्तुओं के कण दूध के भीतर पहुँच जाते हैं। फिर गाड़ी के डब्बों में गरमी अधिक होने से दूध बिगड़ जाता है।

दूध के बिगड़ने का सब से अंतिम स्थान बेचनेवाले हलवाई की दूकान और घर होते हैं। दूकानों पर दूध बहुधा खुला रखा रहता है। कुछ थोड़ी सी मक्खियां यदि दूध में न पड़ जायँ तो आश्चर्य ही है। दुध में से मलाई का निकाल लेना और उसमें पानी मिला देना तो बहुत ही साधारण बात है जिससे दूध का पोषक-मूल्य बहुत घट जाता है। बहुधा लोग बालटियों में भरकर एक छोटे नपने से घर घर दूध देते फिरते हैं। खुले हुए दूध को गलियों में लिये फिरने से उसमें कितने जीवाणु या दूसरी गन्दगियाँ मिलती होंगी यह भली प्रकार अनुमान किया जा सकता है। इस दूध से किसी लाभ की आशा करना सरासर भूल है। इससे यदि कोई रोग उत्पन्न न हो तो वही काफी है।

घर पर भी दूध को उस हिफाज़त से नहीं रखा जाता जैसा कि रखना चाहिये। आने के पश्चात् घंटों तक खुले हुए बरतनों में पड़ा रहता है। इन सब कारणों से दूध पीने योग्य नहीं रहता।

बच्चों में राजयक्ष्मा बहुत अधिक पाई जाती है। इसका

मुख्य कारण रोगी गौ का दूध होता है जिसमें रोग के जीवाणु सम्मिलित रहते हैं। बच्चों की अंत्रियां और शरीर बहुत कमज़ोर होते हैं जो शीघ्र ही इन जीवाणुओं के कार्यक्षेत्र बन जाते हैं। गौओं को यह रोग बहुत होता है। यही कारण है कि इतने बच्चे इस रोग से ग्रस्त रहते हैं। मानचेस्टर में १६२० में नगर के सारे दूध की परीक्षा की गई थी। २०% दूध अर्थात सारे दूध के $\frac{१}{५}$ भाग में इस रोग के जीवाणु पाये गये थे।

दूध इतनी आवश्यक वस्तु है कि उसका उचित प्रबंध होना बहुत आवश्यक है। बच्चों और माताओं के अतिरिक्त रोगी या साधारण जनता के लिये भी जो निरामिष भोजी हैं, दूध अनिवार्य वस्तु है। उसकी उपयोगिता देखते हुए हमें जनता को अधिक दूध प्रयोग करने के लिए उत्साहित करना है। इसलिये यह भी आवश्यक है कि शुद्ध दूध का प्रबंध किया जाय।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, गन्दे स्थान दूध को गन्दा कर देते हैं। इसलिये स्थानों की स्वच्छता बहुत आवश्यक है। गौ इत्यादि को रखने का स्थान ऐसा होना चाहिए कि वहाँ पर गोबर या कूड़ा जमा न होने पावे। इनको उस स्थान से कई सौ गज की दूरी पर ले जाकर डालना चाहिए। दूध निकालने के पहले सारा स्थान जल से धो देना चाहिए जिससे वहाँ का कूड़ा उड़ न सके। स्थान का फर्श बिलकुल पक्का होना चाहिये और उसके चारों ओर नाली होनी चाहिए

जिससे सारा पानी तुरंत ही वह जाय। दूध निकालने से पहले गौओं के थनों को साबुन और जल के साथ ब्रुश से रगड़ कर धोना चाहिए। अधिक उत्तम तो यह हो कि टाँगे और पिछला भाग भी धो दिया जाय। दूध निकालनेवाले को अपना हाथ साबुन और पानी से भली प्रकार धोना चाहिए और उसके पश्चात् किसी निस्संक्रामक वस्तु से हाथों को स्वच्छ करना चाहिए। युरोप में दूध निकालनेवाले को दूध निकालते समय एक स्वच्छ शुद्ध लबादा और एक टोपी पहननी होती है। वह बरतन जिसमें दूध निकाला जाय, पूर्णतया स्वच्छ होना चाहिए। युरोप और अमरीका में भाप द्वारा यह शुद्ध किया जाता है। उबलते हुए पानी से जो भाप निकलती है उसका भार बढ़ा कर उसमें इन बरतनों को कुछ समय के लिये रख देते हैं। जिन यंत्रों द्वारा यह किया जाता है वे Steam-Sterilizers कहलाते हैं। इन बरतनों का, जिनमें दूध निकाला जाता है, विशेष आकार होता है। इनका मुँह इतना पतला होता है कि केवल दूध की धार ही उसमें जा सकती है। इससे दूध में जीवाणु या दूसरी गन्दगी का $\frac{२}{५}$ भाग कम हो जाता है।

गौओं की शुद्धता भी एक मुख्य बात है। उनकी एक डाक्टर के द्वारा पहले ही जाँच हो जानी चाहिए कि वे रोगी तो नहीं हैं। राजयक्ष्मा रोग को मालूम करना बहुत

आवश्यक है। यदि गौ को यह रोग है तो उसको दूसरे पशुओं के साथ कदापि नहीं रखना चाहिए और न उसका दूध ही पीना चाहिए। यह दूध ही बच्चों के रोग का कारण है।

शुद्ध दूध उत्पन्न करने के लिये तीन बातें बहुत आवश्यक हैं। (१) शुद्ध बरतन (Sterilized) (२.) शुद्ध गौ जिनके स्तन पूर्णतया शुद्ध हों। (३.) शुद्ध दूध निकालने का बरतन (जिसका मुंह छोटा हो)। अमरीकावाले दूध की शुद्धता पर बहुत ध्यान देते हैं। दूसरे सब देशों की अपेक्षा अमरीका में दूध का अच्छा प्रबंध है। उन्होंने दूध संबंधी कानून बना दिया है और दूध की शुद्धता को देखने के लिये न्यूयार्क में एक कमीशन स्थापित है। उसका काम दूध लेनेवालों को और बेचनेवालों को शुद्ध दूध के प्रयोग करने में सहायता देना है। जो लोग उसके नियमों के अनुसार गौ या दूसरे पशु नहीं रखते, या स्थान ऐसे शुद्ध नहीं होते जिनको की कमीशन मान ले, या दूसरी कोई त्रुटि किसी बात में होती है तो वे दूध नहीं बेचने पाते। केवल वही फ़ार्म जिनसे कमीशन पूर्णतया संतुष्ट होता है दूध बेच सकता है। इनमें से भी जो बहुत उत्तम फ़ार्म होते हैं जहां कमीशन समझता है और इस बात से संतुष्ट रहता है कि वहाँ प्रथम श्रेणी का दूध उत्पन्न किया जाता है उन का दूध Certified milk के नाम से बेचा जाता है। इसका मूल्य कुछ अधिक होता है किन्तु दूध प्रथम श्रेणी का होता

है। लेनेवाले को यह संतोष होता है कि दूध बहुत उत्तम है और बेचनेवाला समझता है कि उसकी मेहनत के लिये अधिक मूल्य मिलता है। इन फ़ार्मों को जो शर्तें पूरी करनी होती हैं उनमें से कुछ नीचे लिखी जाती हैं।

(१) सारा स्थान शुद्ध रखना चाहिए और वहाँ जो गोबर इत्यादि हो वह रोज कई सौ फुट दूर ले जाना चाहिए। इससे दुर्गंधि जाती रहती है और मक्खियों की संख्या घट जाती है।

(२) गौशालाएँ पूर्णतया स्वच्छ होनी चाहिएँ और वहाँ प्रकाश और वायु के आने जाने का उचित प्रबंध होना चाहिए।

(३) केवल वही गौ वहाँ रहनी चाहिए जिसकी राजयक्ष्मा के लिए परीक्षा की जा चुकी है और जो रोग से युक्त नहीं पाई गई हैं। उनकी परीक्षा वर्ष में कम से कम एक वार अवश्य होनी चाहिए। जिस गौ पर तनिक सा सन्देह भी हो उसे अलग कर देना चाहिए और उसके दूध को काम में न लाना चाहिए। गौ के भोजन को कमीशन के आदमी स्वयं देखते हैं कि उनको वैज्ञानिक रीति पर भोजन मिलता है।

(४) दूध निकालनेवाले स्वच्छ और सब तरह के रोगों से मुक्त होने चाहिएँ। यदि वे किसी संक्रामक रोग के रोगी से मिला भी है तो उसे दूध नहीं निकालना चाहिए।

(५) दूध की पहली कुछ धारों को बरतन में न लेना

चाहिए। वे शुद्ध नहीं होतीं। दूध निकालने के पश्चात् स्तनों के अगले भाग में कुछ दूध रह जाता है जिसमें जीवाणु पड़ जाते हैं। निकालने के पश्चात् दूध को एक साफ हवादार कमरे में तुरंत ही भेज देना चाहिए जहाँ वह छान कर ठंढा किया जाय। ठंढा करने (Cooling) की रीति आगे चलकर बताई गई है। ठंढा करने के पश्चात् दूध को बोतलों में भर देना चाहिए।

इस प्रकार से निकाला हुआ दूध, जिसकी परीक्षा हो चुकती है Certified milk के नाम से बिकता है।

बच्चों के लिये दूध का प्रबंध।

जिस समय फ्रांस में बच्चों का पैदा होना कम हो गया था उस समय वहाँ की सरकार को बच्चों के भोजन में उन्नति करने की तरकीबें निकालनी पड़ी थीं। इसी अभिप्राय से अनेक संस्थाएँ बनाई गईं। एक संस्था प्रोफेसर हर्गॉट (Professor Hergott) द्वारा १८९० में नेनसी में स्थापित की गई थी। सन् १८९२ में प्रोफेसर बूडिन (Prof. Budin) ने पेरिस के च्यारिटे हास्पिटल में इसकी शाखा स्थापित की। थोड़े दिनों में सारे देश में ऐसी बहुत सी संस्थाएँ स्थापित हो गईं। ये संस्थाएँ अधिकतर जनाने अस्पतालों के साथ ही मिली हुई होती हैं। जो स्त्रियाँ यहाँ प्रसव के लिये आती हैं उनसे कुछ लिया नहीं जाता और वे बच्चे जो अस्पताल में पैदा होते हैं दो वर्ष तक अस्पताल

की देखरेख में रहते हैं। उन बच्चों के लिये जिनकी माताएँ उनको दूध पिलाने में असमर्थ हैं, अस्पताल से नित्य शुद्ध दूध दिया जाता है और समय समय पर माताओं को उन बच्चों को अस्पताल में लाना पड़ता है जहां उनको तौला जाता है है और उनकी शारीरिक वृद्धि की परीक्षा की जाती है।

दूसरे प्रकार की संस्थाएँ, हैं, जो बच्चों के लिये केवल शुद्ध दूध का प्रबन्ध करती हैं। उनका किसी अस्पताल के साथ संबंध नहीं होता। बहुधा ये संस्थाएँ दानी पुरुषों के चन्दे से बनी होती हैं और इनका प्रबंध एक कमेटी के हाथ में होता है। इन संस्थाओं की देखा देखी इंग्लैंड में Infant milk Depots खोले गए हैं। पहली संस्था १८९९ में लँकशायर में खोली गई थी।

इस समय सब से बड़ी संस्था लिवरपूल में है जहाँ सन् १९२० में ३५००० पौंड दूध बाँटा गया था। इसके साथ एक गोशाला और डेयरी है जहाँ पशु रखे जाते हैं और दूध उत्पन्न किया जाता है। सन् १९२० में २०००० बच्चों को यहाँ से दूध मिला था।

इन संस्थाओं के खोलने पर दूध का उचित प्रबंध करना बहुत आवश्यक होता है। एक इंसपेक्टर द्वारा जो स्वास्थ्य या पशु संबंधी शिक्षा-प्राप्त होता है गोशाला का निरीक्षण कराना होता है। उचित स्थान मिलने पर गौ या दूसरे पशुओं की राजयक्ष्मा के लिये परीक्षा होती है। जब गौएँ सब

प्रकार से संतोषजनक पाई जाती हैं तब उनको रखा जाता है। दूसरी जितनी भी बातें ऊपर बताई जा चुकी हैं उन सब का ध्यान रखते हुए दूध को निकाल कर स्वच्छ बरतनों में भर कर डिपो में भेज दिया जाता है।

दूध को वहाँ शुद्ध किया जाता है और भिन्न भिन्न अवस्था के बच्चों की आवश्यकता के लिये दूध में पानी इत्यादि मिला कर उसे बोतलों में भर दिया जाता है। जिस बालक को जैसे दूध की आवश्यकता होती है उसके लिये वैसा ही दूध दिया जाता है। एक एक बोतल में इतना दूध भरा जाता है जितना बच्चे को एक बार के लिये आवश्यक होता है। माता को केवल इतना करना पड़ता है कि वह बोतल को गरम करे और उस पर रबर का निपिल लगा कर बालक को पिला दे। दूसरी बार दूसरी बोतल काम में लाई जावे। इस प्रकार दूध में दोष उत्पन्न होने का बहुत कम अवसर रहता है।

जहाँ बच्चे और माता के लिये इतना किया जाता है वहाँ इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि यदि माता बच्चे को दूध पिलाने के योग्य है तो उसे यह दूध न मिलने पावे। उसे बच्चे को दूध पिलाने के लिये मजबूर किया जाता है, क्योंकि यह दूध माता के दूध की बराबरी नहीं कर सकता।

एक निरीक्षक केवल इसलिये नियुक्त किया जाता है कि वह यह देखे कि जिन बच्चों को दूध दिया जाता है वे

दूध से कुछ लाभ भी उठा रहे हैं या नहीं। समय समय पर उसे घर पर जाकर देखना होता है कि दूध का दुरुपयोग तो नहीं होता है।

ऐसे प्रबंध से कितने बच्चों को उत्तम और पुष्टिकारक भोजन मिलता है इसका अनुमान किया जा सकता है। हमारे देश में इन बातों का होना कितना आवश्यक है इसको पाठक स्वयं समझ सकते हैं। दूध ही पर बच्चे के जीवन का आधार है, बच्चे पर जाति के जीवन का आधार है। बालजीवन के नष्ट होने का अर्थ जातीय जीवन का नाश है। जो लोग जातीय जीवन को सुधारना चाहते हैं उनका धर्म है कि बाल-जीवन पर भी ध्यान दें।

विषय-सूची

शिशु-पालन

(१) स्नान

जव वच्चा जन्म लेता है तव उसका सारा शरीर एक सफ़ेद चिकनी तेल के समान वस्तु से ढका रहता है। इसको साफ करने के लिए वच्चे को स्नान कराने की आवश्यकता होती है पर नहलाने से पहले वच्चे के सारे शरीर पर शुद्ध सफ़ेद वेसलीन मल देनी चाहिए और तव एक नरम तौलिए या फलालैन के टुकड़े से रगड़ कर उसे पोंछ देना चाहिए। वगल, जंघा इत्यादि स्थानों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। कटे हुए नाल पर शुद्ध वस्त्र का टुकड़ा (Sterilized gauze) वांध देना उचित है। इसके ऊपर होती हुई फलालैन की चौड़ी पेटी कमर के चारों ओर वँधी रखनी चाहिए। आँखों को वोरिक एसिड (Boric acid) के जल से धोकर उनमें सिल्वर नाइट्रेट (Silver nitrate) के जल की एक वूंद डालना कभी भी भूलना न चाहिए। इसके अनंतर स्नान का आयोजन होना चाहिए।

जिस जल से वच्चे को स्नान कराना हो उसकी उष्णता १०० फ़रनहीट डिग्री के लगभग होनी चाहिए। मुँह, आँखें, सिर इत्यादि पहले अच्छी प्रकार धो कर तौलिये से पोंछ देने चाहिएँ। इसके पश्चात् शरीर को धोना चाहिए। जिस जल से शरीर साफ किया जाय उसको मुँह तथा आँखों को धोने के काम में न लाना चाहिए। वच्चों को स्नान कराने के लिए सव से सुगम पात्र टव (tub) है किंतु दस दिन से छोटे वच्चे को टव में स्नान कराना उचित नहीं। जव नाल सूख कर गिर जाय तव टव में स्नान कराना उचित है।

प्रथम स्नान

स्नान कराते समय वच्चे को गोद में लेकर किसी चौकी इत्यादि पर वैठना चाहिए। इस समय वच्चे के नीचे रवड़ का कपड़ा रख लेना चाहिए जिसमें नहलानेवाले के कपड़े न भीगें। वच्चे को विल्कुल वस्त्र-हीन करके उसको गरम कंवल में लपेट लिया जाता है, सिर और मुँह खुले रहते हैं। सव से प्रथम सिर और मुँह ही गरम जल से धोए जाते हैं जिसके पश्चात् उनको नरम तौलिये से भली प्रकार पोंछ देना आवश्यक है। यह ध्यान रहे कि मुँह पर सावुन नहीं लगाना चाहिए। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है आँखों को वोरिक एसिड के जल से धोना चाहिए। धोने के लिए शुद्ध वनी हुई रूई (Absorbent cotton) जो अँगरेजी दवाखानों में मिल सकती है काम में लानी चाहिए। नेत्र को

स्नान किस प्रकार कराना चाहिए

स्वच्छ करते समय बच्चे को पीठ के बल लिटा देना चाहिए।

नेत्र

रूई के एक टुकड़े को बोरिक एसिड के जल में भिगो कर दाहिने हाथ के अँगूठे तर्जनी, और मध्य की उँगलियों से पकड़ना चाहिए। बाएँ हाथ के अँगूठे और तर्जनी से नेत्र के ऊपर और नीचे की पलकों को खोल कर नेत्र के भीतरी कोने के पास रूई के टुकड़े से जल निचोड़ देना चाहिए। बच्चा स्वयं ही आँखें बन्द कर लेगा तत्पश्चात् उसी रूई से आँख ऊपर से पोंछ देनी चाहिए। इसी प्रकार से दोनों नेत्रों को स्वच्छ करना उचित है। जन्म लेने के पश्चात् आँखों में सिलवर नाइट्रेट (Silver nitrate) का एक बूंद डालना बहुत आवश्यक है। नेत्र के जिन भयंकर रोगों की किन्हीं कारणों से संभावना हो सकती है ऐसा कर देने से उनका डर कम हो जाता है।

मुख

तर्जनी पर, वैसी ही रूई, जो आँखों के लिए काम में लाई गई है, लपेट कर मुँह के भीतर चारों ओर फेरनी चाहिए। इससे जिह्वा, तालु इत्यादि सारे मुख का भीतरी भाग स्वच्छ हो जाता है। इसके पश्चात् यदि हो सके तो सुहागा मिली हुई ग्लिसरीन (Boro-Glycerine) या शहद की एक उंगली फेर दे।

नाक

नथने भी इसी प्रकार स्वच्छ करने चाहिएँ, किंतु उनके भीतर इतना स्थान नहीं होता कि उँगली जा सके, इसलिए लकड़ी के बहुत छोटे छोटे टुकड़े

बनाकर रूई को उसके चारों ओर लपेट लेना उचित है। नथनों के भीतर भी ग्लिसरीन लगा देना लाभदायक है।

शरीर

तदुपरांत शरीर को धोना चाहिए। दूसरी बेर जब स्नान कराना हो तब कपड़े के एक टुकड़े से पहले सारे शरीर पर साबुन मल देना चाहिए। और फिर एक दूसरे भीगे हुए कपड़े से पोंछ देना चाहिए। इसके लिए स्पंज (Sponge) के टुकड़े जो बाजार में बिकते हैं उत्तम हैं। तत्पश्चात् एक सूखे नरम तौलिये से सारे शरीर को सुखा देना चाहिए। मल स्थान, बगल, गर्दन इत्यादि को विशेषतया स्वच्छ करना चाहिए। इन स्थानों में पसीना, धूल इत्यादि वस्तु जम जाती हैं।

ध्यान में रखने योग्य बातें

साबुन बहुत तेज न होना चाहिए। (Pear's glycerine) पीयर्स साबुन बहुत उत्तम है। शरीर को ध्यानपूर्वक स्वच्छ करना चाहिए। स्नान के समय या उसके बाद शरीर की हलकी मालिश करनी चाहिए। अधिक तीव्र मालिश करने से देह का चर्म चटक जाता है। इसके अतिरिक्त बहुत अधिक पाउडर (Powder) के प्रयोग करने से भी चर्म को हानि पहुँचती है। स्नान के पश्चात् बहुत हलका पाउडर छिड़कना चाहिए। यदि बच्चे की देह का चर्म अधिक चटकता हो तो साबुन का प्रयोग बिलकुल न करना चाहिए।

प्रायः दस दिवस में नाल सूखकर गिर जाता है। उस समय बच्चे को बिना किसी भय के टब में स्नान कराया जा सकता है। टब में इतना

टब-स्नान

जल होना चाहिए कि बच्चे का सारा शरीर उसमें भली प्रकार डूब जाय। बच्चे की अवस्था और ऋतु के अनुसार जल की उष्णता होनी चाहिए। बहुत छोटे बच्चों के लिए जल की उष्णता १०० फैरनहीट होनी चाहिए। ज्यों ज्यों बच्चे की अवस्था बढ़ती जाय त्यों त्यों उष्णता भी कम कर सकते हैं।

चार या पाँच मास की अवस्था पर जल की उष्णता जाड़े के दिनों में ८५-९० फैरन० रख सकते हैं। गरमियों में जल गुनगुना होना चाहिये। ठंढे जल से जिसकी उष्णता ५०, फैरन० हो उस समय तक बच्चों को स्नान नहीं कराना चाहिए जब तक बालक तीन या चार वर्ष की आयु का न हो जाय।

जल की उष्णता

साधारणतः प्रति दिवस एक बार स्नान करवाना चाहिए, किंतु जिन दिनों में गरमी बहुत अधिक पड़ती हो उन दिनों में दो बार स्नान करवाने से कोई हानि नहीं है। स्नान प्रति दिवस नियमित रूप से एक ही समय पर करवाना चाहिए। प्रातः काल ९-१० बजे का समय उत्तम है। जाड़े के दिनों में दोपहर के समय बच्चे को वायु सेवन के लिए भेजा जा सकता है। गरमियों के दिनों में स्नान

प्रति दिवस कै बार स्नान करवाना चाहिए

का समय ७ और ८ के बीच ठीक है। गरमी के दिनों में दो वार स्नान कराना अनुचित नहीं है।

टब में रखने से पहले सिर और मुख को भली प्रकार धो देना चाहिए, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। तब गरदन, सिर और कंधे को बाएँ हाथ पर तथा शरीर को अग्रबाहु पर रखकर और दाहिने हाथ से पाँवों को पकड़कर धीरे से बच्चे के शरीर को जल के भीतर इस प्रकार रखना चाहिए कि सिर और गर्दन जल के ऊपर रहें। एक वस्त्र से साबुन पहले ही भली प्रकार सारे शरीर पर मल देना चाहिए। इस प्रकार स्नान करवाने से बच्चे का शरीर बराबर हाथ और बाहु पर ही रहता है, टब के टीन से नहीं लगने पाता, किंतु सारा शरीर जल के भीतर मग्न रहता है। टब के भीतर रखने पर एक छोटे वस्त्र से सारा शरीर रगड़ना चाहिए। इससे साबुन पूर्णतया धुल जायगा। वस्त्र के स्थान पर स्पंज अधिक उत्तम रहता है। वस्त्र या स्पंज दाहिने हाथ में, जिससे इस समय तक पावँ पकड़े हुए थे, रहता है और उससे सारा शरीर भली भाँति मला जा सकता है। स्नान समाप्त करने पर इस वस्त्र को भली भाँति धोकर सुखा देना चाहिए।

स्नान किस प्रकार करवाना चाहिए

बच्चे को जल के भीतर एक या दो मिनट से अधिक रखना उचित नहीं है। टब से बाहर निकाल कर शरीर को एक नरम तौलिए से भली प्रकार पोंछना चाहिए जिसमें

शरीर पर जल न रह जाय। इसके बाद देह के चर्म को हथेली से थोड़े समय तक रगड़ना चाहिए, जब तक शरीर पर लाली न आ जाय। ऐसा करने से चर्म का रक्त-संचालन बढ़ आता है और चर्म अपनी क्रिया उत्तमता से करता है। इस समय देह पर थोड़ा पाउडर छिड़क देना चर्म को नरम रखता है। अब स्नान समाप्त हो गया और बच्चे को कपड़े पहनाये जा सकते हैं।

निम्नलिखित दशाओं में स्नान नहीं कराना चाहिए—

किन दशाओं में स्नान नहीं करवाना चाहिए

१. यदि शरीर पर किसी प्रकार के दाने निकले हों, जैसे चेचक।

२. यदि नाल सूखकर नहीं गिरा है तो टब में स्नान नहीं कराना चाहिए।

३. भोजन के कम से कम एक घंटे बाद स्नान कराना चाहिए।

४. अगर बच्चा किसी विशेष रोग से ग्रस्त है, जैसे खाँसी, निमोनिया तो ऐसी अवस्था में चिकित्सक के आज्ञानुसार स्नान कराना चाहिए।

५. यदि स्नान कराने से चर्म का रंग नीला पड़ जाता हो तो टब का स्नान कराना उचित नहीं है।

६. यदि चर्म बहुत अधिक फट गया हो तो स्नान के बारे में चिकित्सक से आज्ञा ले लेनी चाहिए।

स्नान कई प्रकार के होते हैं—

शीत स्नान	६०–८०	फैरनहीट
उष्ण स्नान	१००–११०	,, ,,
सामान्य स्नान	८०–९०	,, ,,

किन किन दशाओं और अवस्थाओं में कौन सा स्नान कराया जा सकता है, यह प्रथम ही बताया जा चुका है। निम्नलिखित भिन्न भिन्न प्रकार या वस्तुओं से भी स्नान कराया जाता है—

स्पंज करना—यह सबसे साधारण है। केवल स्पंज ही से सारा शरीर स्वच्छ कर दिया जाता है। स्पंज करने का क्रम इस प्रकार होना चाहिए—मुख, सिर, हाथ, बाहु, गर्दन, वक्षस्थल (छाती), पीठ, पेट और टाँगें। सामान्य उष्णता के जल से स्पंज करने से बेचैनी जाती रहती है। जब ज्वर बहुत अधिक होता है तो उसे कम करने के लिए शीत जल से शरीर को स्पंज करते हैं।

बौछार में स्नान कराना (Shower bath)—तीन वर्ष की आयु के बाद यह स्नान कराना चाहिए। जल के नल के मुँह पर साधारण टोंटी के स्थान पर एक मुहरा लगा दिया जाता है जिसमें बहुत से छेद होते हैं। जब नल खोल दिया जाता है तो जल अनेक धाराओं में होकर गिरता है। इसकी क्रिया चर्म पर बहुत उत्तम होती है। इससे रक्त का अधिक संचालन होने लगता है।

भाप का स्नान—कुछ रोगों में इसकी आवश्यकता पड़ती

है। रोगी को बिस्तर पर लेटा दिया जाता है। बाँस या लोहे की बनी हुई एक महराब, जो इतनी चौड़ी होती है कि मनुष्य के आधे शरीर को ढक ले, बिस्तर पर आर पार रख दी जाती है और उसके ऊपर कंबल डाल दिए जाते हैं जो इधर उधर (सिर्हाने और पायँते) दोनों ओर बिस्तर के नीचे दबा दिए जाते हैं। रोगी का केवल सिर और गला ऊपर रहता है और सारा शरीर कंबलों के भीतर रहता है। महराब के नीचे कंबलों के भीतर जल के एक पात्र से, जो चाय की केतली के आकार का होता है, एक लंबी नली जाती है। जब केतली का जल उबलता है तो भाप नली के द्वारा पहुँचकर रोगी के शरीर को चारों ओर से घेर लेती है। अधिक उष्णता होने से शरीर से पसीना निकलने लगता है।

चोकर के जल से स्नान—आध सेर के लगभग चोकर एक बारीक मलमल के थैले में भर दी जाती है और उसे गरम जल में डाल दिया जाता है। थोड़े समय के बाद उसे अच्छे प्रकार से तीन या चार बार निचोड़ा जाता है। जल की उष्णता साधारण स्नान के बराबर होती है। दो या चार मिनट से अधिक इस जल में स्नान नहीं कराना चाहिए। गरमी में जो अँभौरियाँ निकलती हैं, उनके लिए यह स्नान बहुत अच्छा है।

सोडा—अँभौरियों के लिए ही सोडे से भी स्नान कराते हैं। ५ सेर जल में एक बड़ा चमचा भर कर सोडा मिला देना चाहिए।

श्वेतसार—साधारण श्वेतसार जो पाकशाला के प्रयोग में आता है, वह सोडे की भाँति ही काम में लाया जाता है। उसका गुण भी वही है।

साधारण नमक-को जल में मिलाकर स्नान कराते हैं। जिन बच्चों की तंदुरुस्ती खराब होती है, उनके लिए यह लाभदायक है। २ सेर जल में एक बड़ा चमचा भरकर नमक मिला देना चाहिए।

राई—जिन बच्चों के शरीर में ऐंठन (Convulsion) का रोग हो जाता है उनको यह वस्तु बहुत लाभ करती है। एक चम्मच पिसी हुई राई एक छटाँक ठंढे पानी में मिला दी जाती है। इसको ६ सेर गरम जल में जिसकी उष्णता १००-११० फैर० हो, मिला दिया जाता है। बच्चे को ५ से १० मिनट तक इस जल में रखना चाहिए और बराबर शरीर की मालिश होती रहनी चाहिए। यह स्नान सदा गरम स्थानों में होना चाहिए जैसे धूप में, या कमरे में जहाँ आग जल रही हो। स्नान के बाद बच्चे को गरम कंबलों से ढक देना चाहिए। एक घंटे के बाद उसे वस्त्र पहिनाना चाहिए।

एठन (Convulsions) या नाड़ीमंडल के दूसरे विकारों में उष्ण जल से काम लेते हैं। एक छोटे कंबल को १००-११० फरन० के पानी में भिगोकर बच्चे के चारों ओर लपेट देते हैं और ऊपर से सूखे हुए कंबल उढ़ा देते हैं। इसी प्रकार ठंढे पानी को भी काम में लाते हैं। अधिक ज्वर में या जब

बच्चे को नींद नहीं आती हो, तब यह प्रयोग करते हैं। बिस्तर पर रबड़ का कपड़ा बिछा देते हैं और ठंढे जल से भिगो-कर एक चादर से बच्चे को लपेट कर लेटा देते हैं। उसको चारों ओर से एक कंबल उढ़ा देते हैं। जब ज्वर कम हो जाता है तब चादर को निकाल देते हैं। साधारणतः बच्चे को १५ मिनट तक चादर के भीतर रहने देना चाहिए।

मरोड़ियाँ (अँभौरी) बहुधा बच्चों को बहुत सताती हैं। इसका कारण अधिक पसीना होना है जो वस्त्रों के कारण या ऋतु से सूख नहीं सकता। जब ऐसा हो तब सब से पहले यह आवश्यक है कि शरीर पर बारीक मलमल का वस्त्र पहनाया जाय, और शरीर पर जल और सिरका समान भाग में मिलाकर मला जाय। साथ में बोरिक एसिड शरीर पर छिड़कनी चाहिए।

---

(२) बच्चों के वस्त्र

वस्त्रों के गुण

बच्चों के लिए जो वस्त्र बनाए जायँ, उनमें इन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—उष्णता कोमलता, ढीलापन और साधारणता। बच्चे ठंढ सहन नहीं कर सकते; तनिक ठंढ लग जाने पर वे रोग-ग्रस्त हो जाते हैं। इसलिए वस्त्रों का गरम होना पहली आवश्यकता है। गरमी के दिनों में इसी प्रकार के वस्त्र बारीक और ठंढे होने चाहिएँ, अधिक वस्त्र न पहिनाना चाहिए। गरम वस्त्रों में नरम फ़लालेन बहुत उत्तम है और गर्मियों में मलमल या कोई अन्य ऐसा वस्त्र जिसकी बनावट सछिद्र (Porous) हो, ठीक है। उसके द्वारा पसीना बहुत जल्दी सूख जाता है। वस्त्रों का गरम होना जितना आवश्यक है, उतना ही नरम होना भी आवश्यक है। बच्चों का चर्म बहुत, कोमल होता है। तनिक भी कड़ा वस्त्र होने से देह चटकने लगती है। वस्त्र ढीले रहने से बच्चों को हाथ पाँव चलाने में बहुत सुगमता होती है। शरीर से चिपके हुए वस्त्र होने से बच्चों के अंगों में गति ठीक प्रकार नहीं होने पाती। इस से उनके शरीर की वृद्धि जैसी चाहिए, नहीं होने पाती। इसी प्रकार के साधारण वस्त्र होने चाहिएँ। बच्चे वस्त्रों को जल्दी

खराब कर देते हैं। वे ऐसे होने चाहिएँ जो दिन में दो या तीन वार वदले जा सकें और सहज ही में उतारे या पहिनाये जा सकें। जब कभी वस्त्र खराव हो जाय तो उसको धोकर सुखा देना चाहिए।

उदर पर बाँधने की पेटी

बच्चों की छाती और उदर (पेट) भली प्रकार ढका रहना चाहिए। उदर के चारों ओर फ़लालैन की एक पट्टी बँधी रहनी चाहिए। यह बहुत ढीली न होनी चाहिए, न इतनी तंग कि बच्चे का पेट दबने लगे। तंग होने पर बच्चे को श्वास लेने में रुकावट पड़ेगी और संभव है कि इससे कै भी होने लगे। बच्चों के वस्त्रों में आलपीनों का प्रयोग न होना चाहिए। यह पेटी आलपीनों द्वारा न बाँधी जानी चाहिए, किंतु इसमें बटन रहना आवश्यक है। बच्चों के उदर के अंग, अँतडियाँ इत्यादि बहुत कोमल होते हैं। उदर की मांस पेशी भी दृढ़ नहीं होती। यह पेटी इन सब को सहारा देती है और विशेष कर उन बच्चों के लिए जिनको दस्त शीघ्र ही हो जाता है, या हरे पीले दस्त आने लगते हैं, बहुत लाभदायक है।

वस्त्र के उचित न होने से हानि

वस्त्र बनवाते समय ऊपर कही हुई आवश्यकताओं को सदा ध्यान में रखना चाहिए। बच्चों के शरीर पर उष्णता की कमी या अधिकता बहुत जल्द असर करती है। इसलिए उसे ठीक रखने के

लिए वस्त्रों का गरम होना बहुत आवश्यक है। वस्त्रों के तंग होने से केवल बच्चों की वृद्धि ही नहीं रुकती, किंतु दस्त, कै होना इत्यादि अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। पेटी के तंग होने से भोजन के पश्चात् आमाशय या अँतड़ियों को फैलने का स्थान नहीं मिलता। जब गैस से भरकर अँतड़ियाँ फैलती हैं तो वह आमाशय को अपने स्थान से हटा देती हैं। आमाशय दबता है, इससे उसकी पाचन शक्ति कम हो जाती है।

कैसे कपड़े के वस्त्र बच्चों के लिए अधिक उत्तम हैं

अन्य वस्तुओं से, बच्चों की आवश्यकता देखते हुए, ऊन अधिक उत्तम है। जो वस्त्र ढीले होते हैं और ढीली बनावटदार कपड़े के बने होते हैं, वे अधिक गरम होते हैं। किंतु ऊन के बारे में भी दो मुख्य कठिनाइयाँ हैं। एक तो यह कि यदि वस्त्र केवल ऊन ही का बनाया जाय तो वह बहुत खुरदरा होगा और बच्चे की देह पर चुभेगा; दूसरे यह कि ऊन का वस्त्र धोने से सिकुड़ जाता है और फिर कड़ा पड़ जाता है। विशेष कर गरमी के दिनों में बच्चे इसे सहन नहीं कर सकते। इन बातों को दूर करने के लिए ऐसा कपड़ा लेना चाहिए जिसमें ऊन और रूई या रेशम मिला हो। रेशम या रूई के बारीक वस्त्र गरमियों के लिए बहुत उत्तम हैं। रेशम रूई से अच्छा है। ऊनी वस्त्रों में बुने हुए कुछ ऐसे कपड़े मिलते हैं जिनमें रेशम

का भाग अधिक रहता है। ऐसे वस्त्र धुलने पर अधिक नहीं सिकुड़ते और पहिनने में भी खुरदरे नहीं होते।

वस्त्र किस प्रकार पहिनाना चाहिए

वस्त्र पहिनाते समय बच्चे को बैठाना नहीं चाहिए। गोदी में लेटाकर कपड़े पाँवों की ओर से पहिनाने चाहिएँ, न कि सिर पर होकर। साधारणतः यही किया जाता है कि बच्चे को गोद में बैठाकर उसके सिर पर से वस्त्र को पहिनाने का उद्योग करते हैं। ऐसा करना भूल है। वस्त्र प्रथम ही ऐसे बनाने चाहिएँ कि पाँव से होकर सहज में खिंच सकें।

उदर की पेटी

उदर की पेटी जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, चार महीने तक पहिनानी चाहिए। यह पाँच इंच के लगभग चौड़ी होती है। लंबाई इसकी इतनी होनी चाहिए कि उदर पर उसका एक पूरा लपेटा दिया जा सके। जब तक नाल नहीं गिरता, उस समय तक यह नाल और नाभि को सहारा देती है। इस समय नाल का सिरा एक घाव के समान होता है जिसका ढका रहना आवश्यक है। नाल के गिरने के समय तक तो पेटी नाल की रक्षा करती है। उसके पश्चात् उदर को ठंढ से बचाती है और ऊपर कहे हुए कार्य करती है; अर्थात् उदर के अंगों को आश्रय देती है। चार मास के पश्चात् इस पेटी को बदल देना चाहिए और फ़लालैन की पेटी के स्थान में बुने हुए Abdominal Band का प्रयोग करना चाहिए। यह "Arnold" Knitted

Abdominal Band के नाम से बाजार में मिलते हैं। यह पेटी इतनी चौड़ी होनी चाहिए कि उदर और वक्षःस्थल का भी कुछ भाग ढका रहे।

मोजा

बच्चों को मोजा पहिनाना आवश्यक है। जाड़े में गरम ऊन का मोजा पहिनाए रखना चाहिए। इससे बच्चा सरदी से बचता है।

गरमियों के वस्त्र

गरमियों के दिनों में पतले गौज़ (gauze) का एक वस्त्र शरीर पर रहना चाहिए। जिस प्रकार मौसिम बदले, उसी प्रकार बाहर के वस्त्रों में भी परिवर्त्तन कर देना चाहिए। अर्थात् यदि कुछ ठंढ हो जाय तो अधिक और मोटा वस्त्र पहिना देना चाहिए। यदि मौसिम गरम हो तो वस्त्र पतला और हलका होना चाहिए। दोपहर के समय बच्चों को हलका वस्त्र पहिनाना चाहिए और प्रातः काल तथा सायंकाल गरम कपड़े पहिनाने चाहिएँ। विशेष कर ठंढे मौसिम में मोजा सदा पहिनाए रखना चाहिए। यदि मौसिम बहुत गरम हो तो बिना मोजा पहिने बाहर जा सकते हैं, किंतु ठंढे मौसिम में बिना मोजा पहिनाए बच्चों को कभी बाहर न जाने देना चाहिए। नंगे पाँव रहने से प्रायः बच्चे बीमार पड़ जाते हैं।

जाड़ों के वस्त्र

जाड़े के दिनों में भी वस्त्र भारी नहीं होने चाहिएँ, गरम हों, किंतु हलके होने चाहिएँ। बच्चों की अपेक्षा वृद्धों को अधिक भारी वस्त्रों

की आवश्यकता होती है। अधिकतर बच्चों को बहुत अधिक और भारी वस्त्र पहिना दिए जाते हैं और साथ ही सोने के कमरे भी आवश्यकता से अधिक गरम होते हैं। बच्चों के ठंढ खा जाने के प्रायः ये ही दो मुख्य कारण होते हैं।

रात्रि को सोने के समय बहुत ढीला और हलका वस्त्र होना चाहिए। सब से अच्छा यह होगा कि एक लंबा और ढीला कुरता बना दिया जाय जो पाँव तक पहुँच जाय। बाँह भली भाँति ढीली होनी चाहिए।

---

(३) शयनागार

बच्चे के सोने का स्थान एक दूसरे कमरे में होना चाहिए।

माता के साथ सोना

यदि हो सके तो माता के सोने के पास ही वाले कमरे में बच्चे को भी सुलाना चाहिए, जिससे यदि कोई आवश्यकता हो तो माता शीघ्र ही बच्चे के पास पहुँच सके। यदि किसी कारण से दूसरे कमरे में बच्चे को सुलाना संभव न हो तो माता की चारपाई के पास ही बच्चे की भी चारपाई बिछा देनी चाहिए, किंतु माता और बच्चे का एक ही चारपाई पर सोना ठीक नहीं है। इससे बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

बच्चे के सुलाने के लिए कमरे को चुनने से पहले कई बातों का भली भाँति विचार कर लेना चाहिए।

कमरे की स्थिति

कमरा ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ वायु की गति भले प्रकार हो और जो शोर गुल इत्यादि से दूर हो। कमरे में दिन में किसी न किसी समय धूप अवश्य आती हो, इससे उस कमरे में सील न रहेगी। कमरे का फ़र्श पूरी तरह पक्का होना चाहिए जिससे वह सहज में धोया जा सके। कमरे में आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनी चाहिए। खिड़कियों के परदों की कोई आवश्यकता नहीं है। बहुत सी मेज, कुरसी, कोच इत्यादि का

होना ठीक नहीं है। केवल बच्चे की आवश्यकता ही की वस्तुएँ होनी चाहिएँ। यह कमरा सदा मकान के ऊपर के खंड में होना चाहिए।

कमरे की उष्णता

कमरे की उष्णता जहाँ तक हो सके, दिन रात एक समान रखने का उद्योग करना चाहिए। गरमियों में तो इसकी विशेष आवश्यकता नहीं है, किंतु जाड़े के मौसिम में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है। दिन में कमरे की उष्णता ६८ और ७० फैरनहीट के बीच में रहनी चाहिए। ७० डिगरी के ऊपर उष्णता का बढ़ना ठीक नहीं है। रात्रि में ६०—६५ फैरन० काफी है। पहले दो तीन महीनों में उष्णता ६५ फैरन० से कम न होनी चाहिए। तीन महीने के पश्चात् उष्णता ५५ तक हो सकती है। एक वर्ष के पश्चात् ५० या ४५ फैरन० तक भी होने से कुछ हानि नहीं है।

अधिक उष्णता का परिणाम

कमरे में बहुत अधिक उष्णता रहने से बच्चा रोगी हो जाता है। बच्चे को पसीना बहुत आने लगता है और जुकाम बहुत जल्दी हो जाता है। भूख कम हो जाती है, बहुधा पेट में दर्द होने लगता है और हरे पीले दस्त आने लगते हैं।

प्रकाश

सब से उत्तम बिजली का लम्प है। इससे कोई कर्बन द्विओषित नहीं निकलती। इस कारण कमरे के वायुमंडल के दूषित होने का कोई भय नहीं रहता। यदि कमरे में तेल का लम्प जलता हो तो उसे

बच्चे के सो जाने पर बुझा देना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे को अँधेरे में सोने की आदत पड़ जायगी। जहाँ तक हो सके, मोमबत्ती का प्रयोग न करना चाहिए। गैस का लम्प मोमबत्ती से उत्तम है, किंतु वह भी वायु को दूषित करता है।

वीजन

अन्य स्थानों की अपेक्षा बच्चों के सोने के कमरे का वीजन (ventilation) उत्तम रखने की अधिक आवश्यकता है। शुद्ध वायु पर बच्चे के शरीर की वृद्धि निर्भर रहती है। इस प्रकार प्रबंध करना चाहिए कि शुद्ध वायु का कमरे में पूर्णतया प्रवेश हो किंतु वायु सीधी बच्चे के शरीर पर न लगे। रात्रि के समय सब खिड़कियों व रोशनदानों (ventilators) के किवाड़ों को बंद करना उचित नहीं है। इससे कमरे की वायु अशुद्ध हो जाती है।

खिड़कियों के बाहर की ओर दो परदे रहने चाहिएँ, एक सफ़ेद और दूसरा काला। भीतर की ओर उन परदों का होना, जो केवल मकान को सजाने के लिए लगाए जाते हैं, ठीक नहीं है। दिन में जिस समय बच्चा सोता हो, उस समय काला परदा डाल देना चाहिए जिससे कमरे में बहुत अधिक प्रकाश न रहे और बच्चा गाढ़ी नींद सो सके। सप्ताह में एक बार सारा कमरा भले प्रकार धो देना चाहिए। फ़र्श को प्रत्येक दिवस गीले कपड़े से पोंछना चाहिए, झाड़ू से झाड़ना ठीक नहीं है। कमरे में जितनी वस्तुएँ हों जैसे, कुर्सी, मेज़ इत्यादि,

वे भी सप्ताह में एक बार धुल जानी चाहिएँ और प्रति दिवस गीले वस्त्र से पोंछी जानी चाहिएँ।

लोहे के तारों की चारपाई बच्चों के लिए सब से उत्तम है। उसके इधर उधर और सिर्हाने तथा पाँयताने की ओर भी लोहे या पीतल की सलाखें लगी रहनी चाहिएँ, जो कि बक्त पर निकाली जा सकें। इन पर रूई की गद्दी लगाई जा सकती है जिसके सहारे बच्चा खड़ा भी हो सकता है। इससे बच्चा हवा के झोंकों से भी बचा रहेगा।

———

(४) वायु-सेवन

वायु सेवन का लाभ तथा कब बाहर ले जाना चाहिए

बच्चों के लिए वायु सेवन बहुत हितकर होता है। इससे भूख बढ़ती है, भोजन पचता है तथा बच्चे के शरीर की तौल बढ़ती है और उसका स्वास्थ्य उत्तम हो जाता है। जाड़े के दिनों में बच्चे को एक मास की आयु होने पर बाहर ले जाना चाहिए। गरमियों में एक सप्ताह के बच्चे को बाहर ले जा सकते हैं। यदि बच्चा दुर्बल है अथवा समय से पूर्व ही पैदा हो गया है, अर्थात् गर्भ के नौ महीने पूर्ण नहीं हुए हैं तो तीन महीने की अवस्था से पूर्व बाहर ले जाना ठीक नहीं है।

बाहर जाने का समय

जाड़े के दिनों में बाहर जाने का समय दस या ग्यारह बजे प्रातः काल से लेकर संध्या के चार बजे तक ठीक है। गरमियों में प्रातः काल से संध्या तक प्रत्येक समय बाहर ले जा सकते हैं; किन्तु दस बजे से चार बजे तक गरमी इतनी कड़ी होती है कि उसमें बच्चे के रोगी हो जाने का डर है। इस लिए दस बजे से पूर्व और पाँच बजे के पश्चात् बच्चे को वायु सेवन कराना चाहिए।

ऐसे दिनों में जब हवा बहुत तेज़ हो, ठंढ बहुत अधिक हो या कोहरा गिर रहा हो, बच्चे को बाहर न ले जाना चाहिए।

कब बाहर न ले जाना चाहिए

वायु-सेवन के समय इन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि हवा सीधी बच्चे के मुँह पर तो नहीं लगती। बच्चे के पैरों में गरम मोजे अवश्य होने चाहिएँ और सूर्य की किरणें सीधी आँखों पर नहीं पड़नी चाहिएँ। बच्चे को बाहर ले जाने के लिए सब से उत्तम टपदार गाड़ी होती है। कुछ बच्चों को ठंढ बिलकुल सहन नहीं होती, जरा सी ठंढ से ज़ुकाम हो जाता है; ऐसे बच्चों को दिन के समय जब वह जागते हों, ठंढे कमरों में रखना चाहिए और वायु सेवन के लिए भी कुछ समय तक नंगे सिर रखना चाहिए। इससे वे ठंढ के अभ्यस्त हो जायँगे और कुछ समय के पश्चात् उनको ठंढ से कष्ट पहुँचना बंद हो जायगा।

ध्यान में रखने योग्य कुछ बातें

बच्चे को तौलना बहुत आवश्यक है। इससे ठीक ठीक मालूम होता रहता है कि बच्चे के शरीर की तौल कितनी बढ़ी या कितनी कम हुई है। तौल बढ़ने से मालूम होता है कि बच्चे की शारीरिक दशा उत्तम है। यदि बच्चे की तौल नहीं बढ़ती अथवा कम हो रही है तो उससे समझना चाहिए कि बच्चे का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, वह रोगग्रस्त है। प्रथम वर्ष के पहले छः महीनों

बच्चे को तौलना

में प्रत्येक सप्ताह में एक बार और पीछे के छः महीनों में दो सप्ताह में एक बार तोलना चाहिए। दूसरे वर्ष में महीने में एक बार तौलना आवश्यक है। इस प्रकार बच्चे के शरीर की तौल का एक पूरा ब्योरा रखना चाहिए।

शरीर की तौल कितनी बढ़नी चाहिए

जन्म के पश्चात् प्रथम सप्ताह में बच्चे के शरीर की तौल पाव भर के लगभग कम हो जाती है, इसके बाद वृद्धि आरंभ होती है। छः महीने के एक उत्तम स्वस्थ बच्चे के शरीर में प्रति सप्ताह दो छटाँक से चार छटाँक तक वृद्धि होनी चाहिए। छः मास के बाद से तौल इतनी शीघ्रता से नहीं बढ़ती; एक या दो छटाँक एक सप्ताह में बढ़ती है।

माता और गौ का दूध

जिन बच्चों को गौ का दूध दिया जाता है उनकी वृद्धि आरंभ में तो इतनी उत्तम नहीं होती जितनी उन बच्चों की, जिनको माता का दूध मिलता है; किंतु बाद में दूध के माफ़िक होने पर उसी प्रकार उनका भी शरीर बढ़ता है। पहले पहल बच्चे का आमाशय गौ का दूध नहीं पचा सकता, इसलिए ऐसे समय में गौ के दूध में काफ़ी जल मिला देना चाहिए। दूध माफ़िक न होने से बच्चों का पाचन बिगड़ जाता है, और हरे पीले दस्त आने लगते हैं। दूध के माफ़िक होने पर, दूसरे बच्चों की ही भाँति, जिनको माता का दूध मिल रहा है, इन बच्चों का भी शरीर पुष्ट हो जाता है।

साधारणतः बच्चे की तौल निम्नलिखित अनुसार बढ़नी चाहिए—

आयु	शरीर की तौल
७ दिन	३½ सेर
२ सप्ताह	४ ,,
३ ,, ,,	४ सेर २ छटाँक
४–८ ,,	४½ सेर से ५¼ सेर
२ मास	५½ सेर
३—४ ,, ,,	६ से ७ सेर
५ ,, ,,	७½ ,, ,,
६ ,, ,,	८ ,, ,,
९—१० ,, ,,	८½—९½ ,, ,,
११ ,, ,,	१० ,, ,,
१२ ,, ,,	१०½ ,, ,,

प्रति सप्ताह कितनी तौल बढ़न चाहिए

बच्चे की वृद्धि कम से कम २ छटाँक प्रति सप्ताह के हिसाब से होनी चाहिए। यदि इससे अधिक हो तो बहुत संतोषजनक है।

बच्चे कब चलने लगते हैं

चार मास की आयु होने पर और कभी कभी इससे भी पूर्व अच्छे स्वस्थ बच्चे इस योग्य हो जाते हैं कि यदि उनके शरीर को हाथों पर उठाया जाय तो वे स्वयं ही सिर को उठा लेते हैं। सातवें

या आठवें मास में बच्चे को खड़ा होना चाहिए तथा तेरहव मास में चलने का उद्योग करना चाहिए। पंद्रहवें या सोलहवें मास में बच्चा दौड़ने लगता है। जब बच्चे चलना आरंभ करें तो उनको उनकी इच्छा के विरुद्ध कभी नहीं चलाना चाहिए। जब उनकी मांस-पेशियों में इतनी शक्ति आ जाती है तो वे स्वयं ही चलने का उद्योग करने लगते हैं। बच्चों को चलना सिखाने के लिए बहुत से जो गडूलने, रेलें, सहारे इत्यादि का जो प्रयोग किया जाता है, वह ठीक नहीं है।

बच्चे को कब बोलना चाहिए

साधारणतः एक वर्ष का बच्चा "बा बा" "मा मा" इत्यादि शब्द बोलने लगता है। दो वर्ष के बाद वह शब्दों को मिलाकर भी बोलने लगता है। यदि दो वर्ष के अंत तक भी बच्चा कुछ न बोले तो समझना चाहिए कि वह बहरा और गूँगा है अथवा उसका दिमाग हो ठीक नहीं है।

ऊपर कहे अनुसार न केवल बच्चों की तौल ही का ब्योरा रखना चाहिए, बल्कि उनके शरीर की ऊँचाई, वक्षस्थल और सिर इत्यादि की ठीक ठीक नाप भी रखनी चाहिए।

जन्म के समय	तौल	३½ सेर
	ऊँचाई	२०½ इंच
	वक्षस्थल	१३½ „ „
	सिर	१४ „ „

१ वर्ष	तौल	१०$\frac{१}{२}$ सेर
	ऊँचाई	२९ इंच
	वक्षस्थल	१८ ,, ,,
	सिर	१८ ,, ,,
२ वर्ष	तौल	१३$\frac{१}{२}$ सेर
	ऊँचाई	३२$\frac{१}{२}$ इंच
	वक्षस्थल	१९ ,, ,,
	सिर	१९ ,, ,,
३ वर्ष	तौल	१५$\frac{१}{२}$ सेर
	ऊंचाई	३५ इंच
	वक्षस्थल	२० इंच
	सिर	१९$\frac{१}{२}$,, ,,
४ वर्ष	तौल	१७$\frac{१}{२}$ सेर
	ऊँचाई	३८ इंच
	वक्षस्थल	२०$\frac{३}{४}$,, ,,
	सिर	१९$\frac{३}{४}$,, ,,
५ वर्ष	तौल	२०$\frac{१}{२}$ सेर
	ऊँचाई	४१$\frac{१}{२}$ इंच
	वक्षस्थल	२१$\frac{१}{२}$,, ,,
	सिर	२०$\frac{१}{२}$,, ,,

६ वर्ष	तौल	२२$\frac{1}{2}$ सेर
	ऊँचाई	४४ इंच
	वक्षस्थल	२३$\frac{1}{2}$,, ,,
७ वर्ष	तौल	२४$\frac{1}{2}$ सेर
	ऊँचाई	४६ इंच
	वक्षस्थल	२३$\frac{1}{2}$,, ,,
८ वर्ष	तौल	२७$\frac{1}{2}$ सेर
	ऊँचाई	४८ इंच
	वक्षस्थल	२४$\frac{1}{2}$,, ,,
९ वर्ष	तौल	३० सेर
	ऊँचाई	५० इंच
	वक्षस्थल	२५ ,, ,,
१० वर्ष	तौल	३३$\frac{1}{2}$ सेर
	ऊँचाई	५२ इंच
	वक्षस्थल	२६ इंच

साधारणतः पाँचवें महीने से दाँत निकलने लग जाते हैं। सब से पहले आगे के नीचेवाले दो दाँत निकलते हैं। आठ से बारह महीने तक ऊपर के बीचवाले चार दाँत निकलते हैं। बारह से अठारह महीने तक नीचे के दो दाँत तथा चार और दाँत निकलते हैं। इसके पश्चात् चार कीले

अठारह व चौबीस मास के बीच में निकलते हैं। २४ से ३० मास के बीच में पीछे की चार डाढ़ें निकलती हैं। इस प्रकार एक वर्ष के बच्चे के मुख में छः दाँत होत हैं। दो वर्ष की आयु होने पर बारह हो जाते हैं। ढाई वर्ष पर इनकी संख्या २० होती है। ये दूध के दाँत कहलाते हैं। इस क्रिया में समय की थोड़ी बहुत घटा बढ़ी हुआ करती है।

दाँत निकलने के समय बहुधा बच्चे रोगी हो जाते हैं। उन्हें दस्त आने लगते हैं, निद्रा ठीक नहीं आती, रात्रि को सोते सोते चौंक पड़ते हैं, भूख जाती रहती है, जिह्वा से लार टपकने लगती है और ज्वर भी रहता है। जो बच्चे दुर्बल होते हैं, उनमें ये चिह्न बहुतायत से पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त और, अथवा इनमें से भी बहुत से चिह्न अपथ्य भोजन के कारण होते हैं। इस समय भोजन बहुत हलका देना चाहिए। आवश्यकतानुसार टीथिंग पाउडर (Steedman's Teething Powder) की एक पुड़िया अथवा नीचे लिखी ओषधि सप्ताह में तीन बार सोते समय देने से बच्चों को बहुत लाभ होता है—

हाइ ड्रार्ज-क-क्रीटा $\frac{1}{2}$ ग्रेन

पल्व रिहाई—२ ग्रेन

Hydrargc Creta gr $\frac{1}{2}$

Pnlv Rhei Co gr ii

---

(४) भोजन

बच्चों के लिए सब से उत्तम और स्वाभाविक भोजन माता का दूध है। बच्चे की आयु के अनुसार उसकी आवश्यकताओं में परिवर्त्तन होता है और तदनुसार माता के दूध में भी परिवर्त्तन होता है। जिन बच्चों को माता का दूध मिलता है वे अन्य प्रकार के, गाय के या बने हुए दूध से पले हुए बच्चों की अपेक्षा अधिक हृष्ट पुष्ट होते हैं। गौ का बना हुआ दूध (condensed milk) इतना सुरक्षित तथा शुद्ध नहीं होता जितना माता का दूध होता है। उसमें नाना प्रकार के दूषण मिल जाने का भय रहता है, जिससे बच्चे रोगी हो जाते हैं। अपना दूध बच्चे को पिलाने से माता का भी स्वास्थ्य ठीक रहता है। दूध पिलाना प्राकृतिक और स्वाभाविक है। इसलिए जहाँ तक हो सके, माता को अपना ही दूध पिलाना चाहिए।

बच्चों का स्वाभाविक भोजन

यदि माता को कोई रोग हो, जैसे, राजयक्ष्मा (Tuberculosis) वृक शोथ (Bright's Disease) हृत् रोग, हिस्टीरिया, मिरगी, पांडुरोग, घेंघा, अर्बुद (Cancer) रक्त विकार इत्यादि तो उस समय माता का दूध न पिलाना चाहिए। ऐसे रोगों

किन अवस्थाओं में दूध न पिलाना चाहिए

के समय जैसे, निमोनिया (Pneumonia) डिप्थीरिया (Diqhtheria) मोतीझरा या कोई अन्य तीव्र रोग अथवा गर्भ के दिनों में भी बच्चे को दूध पिलाना उचित नहीं है।

माता के दूध में ८७ भाग जल होता है और १३ भाग ठोस पदार्थ। ठोस पदार्थ में प्रोटीन, वसा, कर्बोज और लवण होता है। वसा मलाई के, प्रोटीन दही के और कर्बोज चीनी के रूप में रहता है। ये सब वस्तुएँ बच्चे के पोषण के लिए आवश्यक हैं। वसा से शरीर में उष्णता उत्पन्न होती है और शरीर मोटा होता है। कर्बोज से शक्ति उत्पन्न होती है। प्रोटीन शरीर के अंगों को, जैसे हृदय इत्यादि, मांस पेशी और रक्त को बनाता है। इसी प्रकार लवण अस्थि के बनाने में सहायता देता है।

दूध के भिन्न भिन्न अंशों के गुण

प्रथम दो दिनों में दूध कम बनता है, इसलिए दिन में केवल तीन या चार बार बच्चे को दूध पिलाना चाहिए। ऊपर की और कोई चीज देने की आवश्यकता नहीं है। यदि बच्चे को प्यास मालूम हो तो थोड़ा पानी दिया जा सकता है।

प्रथम दो दिन में के बार दूध पिलाना चाहिए

तीसरे या चौथे दिन से दूध अधिक बनने लगता है। इन दिनों से दिन में प्रति दो घंटे पर और रात्रि में दो बार दूध पिलाना उचित है।

प्रथम वर्ष में इस प्रकार दूध पिलाना चाहिए—

समय	२४ घंटे में कै बार दूध पिलाना चाहिए	कितना अंतर होना चाहिए	रात्रि में कै बार दूध पिलाना चाहिए
प्रथम दो दिन	४	६ घंटे	१
३ दिन से ६ सप्ताह तक	१०	२ "	२
६ सप्ताह से ३ मास ...	८	२ १/२ "	१
३ मास से ५ मास "	७	३ "	१
५ मास से १२ मास ...	६	३ "	०

कुछ ध्यान देने योग्य बातें

एक बार में बच्चे को बीस मिनट से अधिक दूध नहीं पिलाना चाहिए। दोनों स्तनों से पिलाना अधिक उत्तम है। नियत समय पर नियम-पूर्वक दूध पिलाना बहुत आवश्यक है। इससे बच्चे का स्वास्थ्य ठीक रहता है और उसको केवल नियमित समय पर भोजन करने की आदत पड़ जाती है। इस प्रकार से पला हुआ बच्चा बड़ा होने पर भी नियमित समय पर भोजन करेगा। माता भी बच्चे के इस स्वभाव के कारण बहुत से कष्टों से बच जाती है। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्तन का मुख दूध पिलाने के पहले और बाद में स्वच्छ जल से धो देना चाहिए।

माता का भोजन और स्वास्थ्य

माता के भोजन इत्यादि का बच्चे पर बहुत प्रभाव पड़ता है, इसलिए माता के भोजन और स्वास्थ्य इत्यादि की ओर उचित ध्यान देना चाहिए।

साधारणतः भोजन ऐसा होना चाहिए जो सहज में पच जाय और ताकृत दे। अपथ्य भोजन खाने से यदि माता को किसी प्रकार को रोग होगा तो बच्चे पर उसका प्रभाव अवश्य ही पड़ेगा। बच्चों के पेट के दरद का कारण अधिकतर माताओं की भोजन में असावधानी होती है। भोजन से किसी विशेष वस्तु को निकाल देने या किसी विशेष वस्तु को सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है। जो साधारण भोजन गर्भ से पहले होता था, वही ठीक है। पर माता को इस समय बच्चे का पोषण करना होता है, इससे उस पुराने भोजन में दूध घी इत्यादि की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। भोजन में तरल वस्तुओं का भाग अधिक होना चाहिए। फलों का प्रयोग लाभदायक है, किन्तु कच्चे या खट्टे फल न खाने चाहिएँ। शुष्क फल बादाम इत्यादि भी इस समय के लिये बहुत उत्तम हैं। विशेषतः जाड़े के मौसम में बादामों से माता और बच्चे दोनों को लाभ होता है। मसाले और तीव्र वस्तुओं का प्रयोग बहुत कम होना चाहिए।

व्यायाम

माता के लिए नियमपूर्वक प्रातः और सायंकाल वायु-सेवन बहुत हितकर है। इससे बहुत से रोग जो बच्चे के पैदा होने के बाद हो जाते हैं, नहीं होने पाते, स्वास्थ्य ठीक रहता है और दूध भी काफ़ी उत्पन्न होता है।

विचारों का दूध पर प्रभाव

माता के विचारों का भी दूध पर प्रभाव पड़ता है। यदि माता अनेक चिन्ताओं से पीड़ित रहती है और उसका चित दुखित रहता है तो उस समय का दूध बच्चे के लिये बहुत हानिकारक होगा। ऐसी दशा में पाले हुए बच्चों का शरीर बलवान नहीं होगा। इस-लिए यह आवश्यक है कि माता के चित्त को जहाँ तक हो सके प्रसन्न रखने का उद्योग किया जाय।

स्तन

स्तनों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उनके मुख पर के चमड़े को कभी चटकने न देना चाहिए। जब चमड़ा चटक जाता है तो बच्चे को दूध पिलाने में बहुत कष्ट होता है। इससे बहुधा माताएँ दूध नहीं पिलातीं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चा भूखा रहता है और माता के स्तन दूध से भरकर फूल जाते हैं। दूध पिलाने के पूर्व और पश्चात् दोनों बार बोरिक एसिड के जल से उन्हें धो देना चाहिए और उन पर श्वेत वेसलीन लगानी चाहिए।

ऋतुकाल का दूध पर प्रभाव

ऋतुकाल में दूध कम हो जाता है और बहुधा बच्चा भूखा रहता है। कभी कभी दूध में कुछ ऐसा परिवर्त्तन हो जाता है कि उससे बच्चे को दस्त आने लगते हैं। यदि ऐसा होता हो तो इन दिनों में बच्चे को दूध पिलाना बंद कर देना चाहिए। किंतु यदि बच्च का स्वास्थ्य ठीक रहता है और उसके शरीर में बराबर वृद्धि हो रही है, तो दूध बंद करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

बच्चे को उचित और पर्याप्त भोजन मिलने के लक्षण ये

किस प्रकार जानना कि बच्चे को उचित और पर्याप्त भोजन मिलता है

हैं कि बच्चे का शरीर बराबर वृद्धि करता जाय; और शरीर की तौल प्रत्येक सप्ताह में कम से कम दो छटाँक बढ़ती रहे; बच्चा अधिक रोवे नहीं; सोते समय कभी चौंक कर न उठे; गाढ़ी निद्रा सोवे और जब उठे तब प्रसन्न मुख हो; केवल भूख के समय जब उसको प्रति दिवस भोजन मिलता हो रोवे; उसके गालों पर लाली हो और देखने में उत्तम स्वास्थ्य दीखे। मल का रंग पीला हो। यदि कभी एक आध हरा दस्त आ जाय तो वह बुरे स्वास्थ्य का चिह्न नहीं है, किन्तु लगातार बहुत दिनों तक हरे दस्त आना इस बात का चिह्न है कि बच्चा रोगग्रस्त है।

जब बच्चे को पर्याप्त दूध नहीं मिलता अथवा दूध उसके

बच्चे को उचित भोजन न मिलने के चिह्न और उस समय का कर्त्तव्य

माफ़िक नहीं होता तो बच्चे के शरीर में वृद्धि नहीं होती। बच्चा सदा बेचैन रहता है और बहुधा रोता रहता है। उसे हरे पीले दस्त आने लगते हैं, कभी पेट में शूल होने लगता है, कभी दूध मुँह से गिरता है। निद्रा ठीक प्रकार नहीं आती। यदि ऐसी दशा कुछ दिनों तक जारी रहे तो दूध पिलाना बंद कर देना चाहिए। उसके बाद यदि बच्चे के शरीर में कुछ भी वृद्धि हो तो दूध पिलाना बंद न करके माता के जीवन क्रम को बदल देना चाहिए,

भोजन में परिवर्त्तन करना चाहिए और फिर यह देखना चाहिए कि बच्चे पर इसका कैसा प्रभाव पड़ता है। यदि तब भी बच्चे के शरीर में वृद्धि के कुछ चिह्न न हों तो उसके लिये कोई और प्रबन्ध करना चाहिए। यदि बच्चा दूध पीते ही कै करे देता है तो इसका यह अर्थ है कि उसने अधिक दूध पिया है। ऐसी दशा में बच्चे को दूध पिलाने का समय कम कर देना चाहिए। यदि दूध पीने के कुछ समय बाद बच्चा कै करता है तो समझना चाहिए कि उसे दूध पचता नहीं है, क्योंकि दूध के वसा (चर्बी) का भाग अधिक है। ऐसी दशा में दूध पिलाने के समय में अतंर बढ़ा देना चाहिए अथवा दूध पिलाने के अनतंर साधारण उबाला हुआ पानी पिला देना चाहिए।

यदि बच्चे के पेट में दरद होता है तो समझना चाहिए कि दूध में प्रोटीन अधिक है जिसको बच्चा पचा नहीं सकता। इसके लिए माता को जल अधिक पीना चाहिए और व्यायाम की मात्रा भी अधिक कर देनी चाहिए।

माता का दूध किस समय छुड़वाना चाहिए

साधारणतः पाचवें महीने के पश्चात् माता का दूध बच्चे की आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकता। जिन बच्चों को बहुत दिनों तक दूध पिलाया जाता है, वे कमज़ोर हो जाते हैं। उनको दस्त आने लगते हैं। जिन बच्चों को प्रथम पाँच महीनों में माता का दूध पर्याप्त रूप से मिल चुका है,

उनमें काफी शक्ति आ जाती है और वे गौ का दूध पचा सकते हैं। जो बच्चे अधिक कमज़ोर होते हैं, उनको माता का दूध अधिक दिनों तक पिलाना आवश्यक है। कुछ दशाएँ ऐसी होती हैं जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है, जिनमें माता का दूध बंद कर देना पड़ता है। साधारणतः यदि बच्चे का स्वास्थ्य उत्तम है तो छठे महीने माता का दूध छुड़ा देना चाहिए। इस से अधिक समय तक दूध पिलाने से माता का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

दूध एक साथ नहीं बन्द कर देना चाहिए। ऐसा करने से बच्चा बहुत रोवेगा। उसको गौ के दूध की आदत डालनी चाहिए। पहले एक दो बार माता के दूध देने के समय पर शीशी से दूध देना चाहिए। फिर इसको बढ़ाना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे को शीशी से दूध पीने की आदत पड़ जायगी। इस प्रकार दस वा ग्यारह महीने की आयु तक माता का दूध छुड़वा देना चाहिए। इसके पश्चात् दूध शीशी से न पिलाकर प्याले से पिलाना चाहिए। ये प्याले विशेष प्रकार से इसी लिए बनाए जाते हैं और Feeding cups के नाम से दवाखानों में मिलते हैं।

शीशी से कब तक दूध पिलाना चाहिए

दूध छुड़ाने के पश्चात् सीशी ही से बच्चे को दूध पिलाना चाहिए। यदि बच्चे का दूध अधिक आयु पर पहुँच कर छूटा हो तो शीशी का प्रयोग न करके प्याले से दूध पिलाना उचित है। किन्तु

थोड़ी आयु में जैसे ८ या १० महीने पर दूध शीशी से पिलाना ठीक है। बाज़ार में कई प्रकार की शीशियाँ बिकती हैं। लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शीशी ऐसी हो जो आसानी से साफ़ की जा सके। जो शीशी कई स्थानों पर मुड़ी हो या जिसकी रबड़ की नली अधिक लम्बी हो वह उत्तम नहीं है। ऐसी शीशी भली भाँति साफ़ नहीं की जा सकती।

शीशी कैसी होनी चाहिए

शीशी ऐसी होनी चाहिए कि उसमें साफ करनेवाला बुरुश आसानी से प्रत्येक स्थान पर पहुँच सके जिससे उसमें दूध के जमा होकर सड़ने का तनिक भी भय न रहे। शीशी को भली भाँति साफ रखना बहुत आवश्यक है। तनिक सी भी असावधानी से दूध पीने योग्य न रहेगा।

माता का दूध छुड़ाने के पश्चात् गौ का दूध ही देना उचित है। बहुधा अन्य प्रकार के बने हुए दूध भी दिए जाते हैं, जो बाज़ार में Condensed milk (कंडेंस्ड मिल्क) के नाम से बिकते हैं। इनके प्रयोग से न तो बच्चों के शरीर में शक्ति ही आती है और न उनमें सहन शक्ति उत्पन्न होती है। देखने में ये बालक खूब मोटे ताज़े हो जाते हैं, किन्तु उनका शरीर केवल देखने ही को होता है। तनिक भी बिमारी होने पर उनका शरीर जर्जर हो जाता है। जिन बच्चों को केवल इस प्रकार का बना हुआ दूध ही मिलता है, उनको स्कर्वी (Scurvy) व रिकेटस (Rickets) इत्यादि रोग बहुधा हो जाते हैं। अन्य

वस्तुओं की अपेक्षा बने हुए दूधों में Glaxo और Allenbury's Diet उत्तम है। जब इनका प्रयोग किया जाय तो साथ में अंगूर या नारंगी के रस का एक या दो चम्मच बालक को अवश्य देना चाहिए। बने हुए दूध का विटेमीन नष्ट हो जाता है। इसके अभाव ही के कारण स्कर्वी इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। ताज़े फलों में विटेमीन काफी मात्रा में उपस्थित रहता है। इसलिए दूध में विटेमीन की कमी को पूरा करने के लिये फलों का रस मिलाना आवश्यक है।

यह भली भाँति याद रखना चाहिए कि माता के दूध के पश्चात् सब से उत्तम गौ ही का दूध है। बने हुए दूध का प्रयोग तभी करना चाहिए जब गौ का उत्तम दूध न मिल सके।

गौ कैसी होनी चाहिए

दूध लेते समय यह देखना आवश्यक है कि वह गौ जिस का दूध बच्चे को पिलाया जायगा, भली भाँति हृष्ट पुष्ट तो है, उसको किसी प्रकार का रोग तो नहीं है और अन्तिम बार उसने कितने दिन हुए, जब बच्चा दिया था। यदि गौ को किसी भाँति का कोई रोग होने की आशंका हो तो उसका दूध कभी नहीं लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि बच्चा छोटा है और गौ को ब्याए हुए बहुत दिन हो गए हैं तो उसका दूध बच्चे को माफ़िक न आवेगा। गौ ऐसी होनी चाहिए जिसके बच्चे की आयु उस बच्चे की आयु के लगभग बराबर हो जिसे दूध दिया जाय।

दूध जितना ताजा मिल सके उतना ही उत्तम है। दूध को

दूध निकालते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए

शुद्ध रखने का बहुत प्रयत्न करना चाहिए। दूध में यह एक अवगुण है कि वह बहुत जल्दी बिगड़ता है और जीवाणु बहुत ही सहज में उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। इसलिए जिन बरतनों में दूध निकाला जाय या रखा जाय, वे भली भाँति स्वच्छ हों। अधिक उत्तम यह है कि वे वर्त्तन पानी में उबाल लिये जायँ। एक बड़े वर्त्तन में पानी भरकर उसमें उन बर्त्तनों को रखकर पानी का बर्त्तन आग पर रख देना चाहिए। जब पानी खौलने लगे तो उसे उतारकर बर्त्तनों को ठंढा करके उनमें दूध रखना चाहिए। जिस बर्त्तन में दूध निकाला जाय, उसे भी इसी भाँति स्वच्छ करना उचित है। दूध निकालने से पहले वह स्थान जहाँ पर गौ बँधी हुई है, स्वच्छ कर देना चाहिए और चारों ओर जल छिड़क देना चाहिए जिसमें वहाँ धूल न उड़े। गौ के थनों को साबुन के जल से धो देना चाहिए और जो मनुष्य दूध निकाले, उसके हाथ भी साबुन और गरम जल से धुले होने चाहिएँ।

यदि दूध को किसी दूर के स्थान पर भेजना हो तो बन्द

बोतल का दूध

बोतलों में भेजना चाहिए। दूध को जितने ठंढे स्थान में रखा जायगा, उतने ही अधिक समय तक वह खराब नहीं होगा। ५० फैरनहीट से अधिक

उष्ण स्थान में तो कभी न रखना चाहिए। जहाँ कहीं गौशाला या गवर्नमेंट डेयरी से ऊपर कहे अनुसार शुद्ध दूध वन्द वोतलों में मिल सके, वहीं से उसे लेना अच्छा है। प्रत्येक गवर्मेंट डेयरी में इन सब वातों का ध्यान रहता है। यद्यपि मूल्य कुछ अधिक लगता है किन्तु वस्तु ऐसी होती है जिस पर विश्वास किया जा सकता है।

दूध को ठंडा कर देने से लाभ

दूध की वोतल को अथवा वर्त्तन को यदि दूध घर ही पर निकाला गया है, तो तुरन्त ही ठंढे जल में रख देना चाहिए। ऐसा करने से दूध ठंढा हो जायगा; उसकी उष्णता जाती रहेगी। किन्तु दूध को छानने के पश्चात् वोतल में भरकर वर्फ़ के पानी में रखे। इस प्रकार से ठंढा करने से दूध वहुत समय तक नहीं विगड़ेगा।

गौ और माता के दूध में अन्तर

गौ के दूध की वनावट माता के दूध से भिन्न होती है। यद्यपि दोनों में समान पदार्थ होते हैं किन्तु उनकी मात्रा भिन्न होती है। इसलिए गौ के दूध में ऐसा परिवर्त्तन करना आवश्यक है जिससे उसकी वनावट माता के दूध के सदृश हो जाय। वच्चे गौ का शुद्ध दूध नहीं पचा सकते। गौ के दूध में माता के दूध की अपेक्षा तिगुना प्रोटीन होता है, शर्करा और लवण भी ज्यादा होते हैं। यह प्रोटीन जल्दी नहीं पचता, देर से हजम होता है। माता का दूध सदा ताज़ा और शुद्ध होता है। उस में किसी प्रकार के जीवाणु होने की संभावना नहीं होती।

गौ का दूध कुछ समय तक रखे रहने से और इस कारण से भी कि वह कितने ही हाथों में होकर निकलता है, शुद्ध नहीं रहने पाता। उसमें जीवाणुवों के पहुँचने की बहुत संभावना होती है। इसी से बहुधा छोटे बच्चे जिनको माता का दूध न मिलने से गौ का दूध पीना पड़ता है, बीमार पड़ जाते हैं; उन्हें दस्त आने लगते हैं अथवा अन्य प्रकार के रोग हो जाते हैं। दूध को इस प्रकार से रखना कि उसमें कोई दोष न उत्पन्न हो, बहुत आवश्यक है। अधिक समय तक खुले हुए बर्तन या ऐसे स्थान में जहाँ धूल इत्यादि बहुत हो, रखने से दूध के जल्दी ही दूषित हो जाने की संभावना है।

गौ का दूध किस प्रकार माता के दूध के समान किया जा सकता है

दूध में प्रोटीन और लवण की मात्रा कम करने के लिये जल मिलाना आवश्यक है। साथ में चूने का पानी (Lime-water) भी मिला देना चाहिए। दस छटाँक दूध के लिए आधी छटाँक चूने का पानी काफ़ी है। यदि सोडा इस्तेमाल किया जाय तो १० छटाँक दूध में २० ग्रेनसोडा मिलाना चाहिए।

शकर की कमी किस प्रकार पूरी करनी चाहिए

गौ के दूध में काफ़ी जल मिलाने से शकर की मात्रा कम हो जायगी। इस कमी को पूरा करने के लिये ऊपर से शकर मिलाना आवश्यक है। इसके लिये सब से उत्तम दुग्धोज शर्करा

(milk-sugar) है। दस छटाँक दूध में आधी छटाँक दुग्धोज शक्कर के मिलाने से शक्कर की मात्रा माता के दूध के समान हो जायगी। यह शक्कर साधारण शक्कर से उत्तम रहती है। इसका मूल्य अवश्य अधिक होता है। बाज़ार में बड़े अँग्रेज़ी दवाखानों में यह मिल सकती है। साधारण गन्ने की शक्कर इस से बहुत सस्ती होती है। बहुत से बच्चे इस शक्कर के मिले हुए दूध को अधिक स्वाद से पीते हैं। यदि साधारण शक्कर दूध में मिलानी हो तो दुग्धोज शक्कर की अपेक्षा उसकी आधी मात्रा काफ़ी है। अर्थात् यदि दुग्धोज आधी छटाँक मिलानी आवश्यक है तो साधारण शक्कर केवल $\frac{1}{4}$ छटाँक काफी है। इससे ज़्यादा मिलाने से दूध बहुत मीठा हो जायगा और पेट में दर्द भी पैदा करेगा।

शक्कर का क्या प्रयोजन है

शक्कर दूध में मिलाने से पहले गरम पानी में डाल देनी चाहिए। शक्कर पानी में घुल जायगी। यदि इस शरबत में किसी तरह का मैलापना हो या कोई वस्तु मिली हो तो उसे छान लेना चाहिए। छानने के पश्चात् शरबत को दूध में मिला देना चाहिए। शक्कर मिलाने का प्रयोजन केवल दूध को स्वादिष्ट बनाना नहीं है किन्तु शक्कर शरीर को बनानेवाली एक मुख्य वस्तु है। बच्चों को प्रोटीन या वसा की अपेक्षा शक्कर की अधिक आवश्यकता होती है। माता के दूध में शक्कर की मात्रा अधिक होती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि माता के दूध की अपेक्षा गौ के दूध में तीन गुना प्रोटीन और लवण होता है। इसलिये जितना दूध हो उस से दुगुना पानी उसमें मिला देना चाहिए। यदि दूध एक छटाँक हो तो पानी दो छटाँक होना चाहिए। इससे प्रोटीन और लवण की मात्रा वही हो जायगी जो माता के दूध में है। किन्तु गौ के दूध का प्रोटीन माता के प्रोटीन से अधिक देर में पचता है। इसलिये जब छोटे बच्चे गौ का दूध पीना आरम्भ करें तो उसमें चार या पाँच गुना जल मिला देना चाहिए।

गौ के दूध में कितना पानी मिलाना चाहिए

इतना करने पर भी गौ के दूध में कुछ कमी रह जाती है। उसमें बसा (चर्बी) बहुत कम होती है। इसलिये जल मिलाने से पहले दूध में बसा बढ़ा देना चाहिए। यदि किसी ऊँचे वर्त्तन में भर कर दूध को चार या पाँच घंटे तक रहने दें, तो दूध की सारी बसा (fat) उसके ऊपर के भाग में आ जायगी। इसके लिये चौड़े मुँह की शीशे या ऊंची बोतल ठीक रहती है। ऐसी ही बोतल में चार घंटे तक रहने देने के पश्चात् दूध के ऊपरी तिहाई भाग में १०% बसा रहेगी; ऊपर के आधे भाग में ७% और सारे दूध में ४% बसा रहेगी। इस भाँति यदि सब से ऊपर का दूध निकाल लिया जायगा तो उसमें बसा का काफी भाग रहेगा।

बसा (चर्बी fat) की कमी को किस तरह पूरा करना चाहिये

ऊपरी आधे भाग में भी वसा कम नहीं होगी। दूध को बोतल में भरकर चार या पाँच घंटे तक रख देना चाहिए। इसके बाद इच्छा के अनुसार ऊपर का तिहाई या आधा भाग अलग कर लेना चाहिए। बोतल को टेढा करके निकालने से यह दूध नहीं निकलेगा। ऐसा करने से सारा दूध मिल जायगा चम्मच से यह दूध अलग किया जा सकता है। उसी दूध को जिसमें वसा बहुत अधिक रहती है, क्रीम कहते हैं।

क्रीम में कितनी वसा होती है

क्रीम कई प्रकार से बनाई जाती है। साधारणतः दूध को बोतल में भरकर चौबीस घंटे तक रख देते हैं। पश्चात् ऊपर का भाग अलग कर देते हैं। इस प्रकार से बनाई हुई क्रीम में १६% वसा होती है। क्रीम निकालने की एक मशीन भी आती है। इससे जैसी क्रीम चाहें बना सकते हैं। साधारणतः बनी हुई क्रीम में १८—२०% वसा रहती है। वसा का भाग ३५% से ४०% तक बढ़ाया जा सकता है।

बच्चे के पीने के लिये जो दूध तैयार किया जाय उसमें इसी १०% या ७% वसा वाले दूध का प्रयोग होना चाहिए। इस दूध में आवश्यक जल की मात्रा मिलाने से भी वसा का भाग कम नहीं होगा और लवण तथा प्रोटीन की मात्रा ठीक हो जायगी। पहले तीन चार महीने तक प्रोटीन वसा से आधा होना चाहिए। इसके पश्चात् प्रोटीन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

छोटे बच्चे अधिक प्रोटीन नहीं पचा सकते। बच्चों के लिए दूध तैयार करने में सदा १० % या ७ % बसा के दूध का प्रयोग करना चाहिए और इसमें आवश्यकतानुसार जल मिलाकर दूध तैयार कर लेना चाहिए। यह दूध ऊपर कहे अनुसार तैयार हो सकता है अथवा क्रीम और साधारण दूध को मिला कर बनाया जा सकता है। जहाँ तक ताज़ा गौ का दूध मिल सके, वहाँ तक सदा उसी का प्रयोग करना चाहिए।

दूध गरम करना या उबालना

दूध को गरम करने का तातपर्य्य यह है कि उसमें किसी प्रकार के जीवाणु न रहने पावें। यदि संयोग से कुछ उसके भीतर पहुँच गए हों तो वे नष्ट हो जायँ, और ऐन्द्रिक पदार्थ भी यदि दूध में उपस्थित हों तो वे भी नष्ट हो जायँ। किन्तु जिस प्रकार से साधारणतः दूध गरम किया जाता है, उससे बहुत कुछ हानि भी होती है। ताज़े दूध में ऐसे पदार्थ रहते हैं कि उनकी क्रिया से दूध स्वयं ही हजम होजाता है। इनको ferments (फर्मेंट) कहते हैं। हमारी अँतडियों में भी कई ऐसी वस्तुएँ रहती हैं जिनसे भोजन के पचने में बहुत सहायता मिलती है। ये पदार्थ ८० फैरनहीट से ऊपर की उष्णता से नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण दूध को उबालने से इन वस्तुओं का गुण जाता रहता है। यदि कच्चा दूध पूर्णतया शुद्ध रखा जा सके तो वह बहुत गुणकारी होगा। किन्तु दूध में जीवाणु इतना शीघ्र पहुँच जाते हैं और पहुँचकर उनकी संख्या

इतनी जल्दी बढ़ती है कि विना गरम किये हुए दूध को पीना उचित नहीं है। गरम करने में ऐसा प्रवन्ध करना चाहिए कि जीवाणु तो नष्ट होता जायँ, किन्तु दूध में सम्मिलित वस्तुओं का नाश न हो। इसके लिये उष्णता को ८० फैरन० से ऊपर न बढ़ने देना चाहिए। सब से उत्तम यह है कि दूध की वोतल को एक दूसरे बर्तन में रक्खे जिसमें पानी भर दिया जाय। वोतल का आधे से अधिक भाग पानी के भीतर रहे। इस बर्तन को वोतल के साथ आग पर रख दे। थोड़े समय में बर्तन का पानी खौलने लगेगा। उस समय इसको आग पर से हटा दे। इस प्रकार से जो दूध गरम किया जायगा, उसमें यह दोष उत्पन्न नहीं होगा।

बच्चे गौ के शुद्ध दूध को नहीं पचा सकते। इसलिये उसमें जल या अन्य वस्तुओं का, जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है, मिलाना आवश्यक है। बच्चे की अवस्था बढ़ने के साथ उसकी पाचन-शक्ति भी बढ़ती है और साथ में शारीरिक आवश्यकताएँ भी बढ़ती हैं। इसलिये अवस्था के अनुसार दूध में पानी की मात्रा को भी कम करते जाना चाहिए। नीचे लिखी सारिणी में यह बताया गया है कि भिन्न भिन्न अवस्था और आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न भिन्न वस्तुओं की कितनी मात्रा होनी चाहिए।

	१	२	३	४	५
१०% दूध*	१ छटाँक	$1\frac{१}{२}$ छ०	२ छ०	$2\frac{१}{२}$ छ०	३ छटाँक
दुग्धोज शक्कर—	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,
चूने का पानी—	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,
उबला हुआ पानी-	८$\frac{१}{२}$,,	८ ,,	७$\frac{१}{२}$,,	७ ,,	६$\frac{१}{२}$,,

प्रथम चार या पाँच महीनों में भोजन इस सारिणी के अनुसार तैयार करना चाहिए। साधारणतः दूसरे दिवस पर नं० १ भोजन आरम्भ करना चाहिए। दो या तीन दिन के पश्चात् नं० २ कर देना चाहिये। १ सप्ताह के वाद नं० ३ का प्रयोग किया जा सकता है। इसके पश्चात् कुछ अधिक समय के अनन्तर पर भोजन वदलना चाहिए। जो वच्चे मजवूत और दृढ़ शरीरवाले होते हैं, उनके लिये भोजन वदलने की आवश्यकता शीघ्र होगी।

जो छोटे तथा निर्वल वच्चे हैं, वे भोजन को इतनी जल्दी नहीं वदल सकेंगे। नं० ५ भोजन को चौथे महीने के अन्त तक प्रयोग करना चाहिए। यह कोई निर्धारित नियम नहीं है। इनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। चार

---

* अर्थात् जिस दूध में १०% वसा है।

या पाँच महीने के पश्चात के भोजन की सारिणी आगे चलकर दी जायगी।

सुविधा के लिये यह उचित है कि चौवीस घंटे का

कितना भोजन तैयार करना चाहिए

भोजन एक साथ तैयार कर लिया जाय। गरम पानी को जितनी आवश्यकता हो, एक वर्तन में भर लेना चाहिए। उसमें हिसाव से शक्कर मिला कर उसका शरवत वना लेना चाहिए। इस वर्तन को ठंढे जल से भरे हुए एक वर्तन में रख देना चाहिए जिसमें यह ठंढा हो जाय। ठंढे शरवत में दूध मिला देना चाहिए। इस प्रकार से जो भोजन तैयार हो, उसको उतनी वोतलों में भर देना चाहिए जितनी वार वच्चे को चौवीस घंटे में भोजन देना हो। दो और वोतलें भी भर लेनी चाहिए जिससे यदि कोई वोतल किसी प्रकार टूट जाय तो वच्चे को भूखा न रहना पड़े। दूध भरकर वोतलों के मुँह को शुद्ध वनी हुई रूई से वंद करने के पश्चात् उनको ऐसे स्थान में रख देना चाहिए जो सव से ठंढा हो। तात्पर्य दूध को ठंडा रखने से है। उसके लिये विशेष वनी हुई मशीन भी आती है जिसको Refrigerator (रेफ्रिजरेटर) कहते हैं। इसमें दूध की वोतलें रख दी जाती हैं इनमें उष्णता वहुत कम रहती है। इससे दूध चौवीस घंटे तक विगड़ने नहीं पाता। जव दूध वच्चे को पिलाना हो तो वोतल को पानी से भरे हुए एक वर्तन में रखकर आग पर रख देना

चाहिए। जब तक पानी खौलने न लगे तब तक बोतल उसी प्रकार रक्खी रहनी चाहिए। इससे दूध काफी गरम हो जायगा। बच्चों को ठंढा दूध नहीं देना चाहिए। इससे पेट में दर्द हो जाता है।

भोजन कब बढ़ाना चाहिए

भोजन में कमी करना या भोजन की मात्रा को बढ़ाना बच्चे की दशा पर निर्भर करता है। उसके लिये कोई विशेष नियम नहीं दिया जा सकता। जब बच्चे की भूख पूरी न होती हो, वह भूखा रहता हो किन्तु खाना पचता हो तो उसका भोजन बढ़ा देना चाहिए।

दूध नियत समय पर देना चाहिए

गौ का दूध पिलाने में इस बात की बहुत आवश्यकता है कि नियमपूर्वक समय पर बच्चे को दूध दिया जाय। समय में गड़बड़ी होने से बच्चे का पाचन खराब हो जाता है, क़ै, दस्त आने लगते हैं। इसलिये नित्य प्रति एक ही समय पर बच्चे को भोजन देना चाहिए। इससे बच्चे को आदत पड़ जायगी। समय पर भोजन न मिलने से वह स्वयं ही माँग लेगा।

कितना भोजन देना चाहिए

भोजन की मात्रा कई बातों पर निर्भर करती है। आयु, बच्चे का स्वास्थ्य, उसके शरीर की तौल और मौसिम के अनुसार भोजन में कमी बेशी की जानी चाहिए। बहुधा माता या अन्य कुटुम्बियों को इस बात की फिक्र रहती है कि बच्चे को अधिक भोजन मिले,

वह खूब खाय। यही बच्चों की सब बिमारियों की जड़ है। इस अधिक भोजन का परिणाम यह होता है कि बच्चा कै करने लगता है। इसका कोई विशेष नियम नहीं दिया जा सकता कि किस अवस्था पर कितना भोजन देना चाहिए। भिन्न भिन्न अवस्था पर निम्नलिखित भोजन की मात्रा साधारणतः एक बार के लिये पर्याप्त है; किन्तु आवश्यकतानुसार भोजन की मात्रा घटाई बढ़ाई भी जा सकती है।

अवस्था	भोजन की मात्रा
७ दिन	$\frac{१}{२}$—१ छटाँक
२ सप्ताह	१—$१\frac{१}{४}$,,
३ ,,	१—$१\frac{३}{४}$,,
४—८ सप्ताह	$१\frac{१}{२}$—$२\frac{१}{४}$,,
२—मास	२—$२\frac{१}{२}$,,
३—५ मास	२—३ ,,
६ ,,	$२\frac{१}{२}$—$३\frac{१}{२}$,,
७—१० ,,	३—४ ,,
११ ,,	३—$४\frac{१}{२}$,,
१२ ,,	$३\frac{१}{२}$—$४\frac{१}{२}$,,

प्रथम मास या ६ सप्ताह में शीशी से प्रत्येक दो घंटे पर दूध पिलाना चाहिए। रात्रि को दस बजे से प्रातःकाल छः बजे तक केवल एक बार दूध देना काफी है। ६ सप्ताह से ३ मास तक दूध प्रत्येक २½ घंटे पर दिन में और केवल एक बार रात्रि को देना चाहिए। ३ से ६ मास तक प्रत्येक तीन घंटे पर दिन में भोजन देना चाहिए, रात्रि में देने की आवश्यकता नहीं है। ७ से १२ मास तक प्रत्येक ४ घंटे पर दूध देना चाहिए। आवश्यकता के अनुसार इस क्रम में अन्तर भी किया जा सकता है।

भोजन किस समय देना चाहिए

बच्चे को दूध पिलाते समय गोद में लिटा लेना चाहिए। उसका सिर एक बाँह पर रहना चाहिए जिससे शरीर से सिर कुछ ऊँचा रहे। दूसरे हाथ में दूध की शीशी (feeding bottle) लेनी चाहिए। शीशी का निपिल बच्चे के मुँह में देकर शीशी निपिल की ओर तनिक टेढ़ी कर देनी चाहिए जिसमें दूध उस ओर आ जाय। पिलाने के समय शीशी को सदा आगे की ओर झुकाए रखना चाहिए जिसमें दूध आगे के भाग में रहे और बच्चे को दूध पीने में कठिनता न हो। शीशी के सीधे रहने पर जब उसमें दूध थोड़ा रह जाता है तो निपिल तक दूध न पहुँचने के कारण बच्चे को दूध नहीं मिलता। शीशी बच्चे को न देनी चाहिए। यदि उसको दे दी जायगी तो थोड़े समय में उसके मुँह से निपिल निकल जायगा और शीशी हाथ से छूटकर

दूध किस प्रकार पिलाना चाहिए

एक ओर गिर पड़ेगी। रात्रि को बच्चे को गोद में लेना आवश्यक नहीं है।

बिस्तर पर लेटे हुए बच्चे को दूध सहज में पिलाया जा सकता है। जब बच्चा बड़ा हो जाय और हाथ से वस्तुएँ पकड़ने लगे तो उसे शीशी दी जा सकती है। किन्तु इस समय भी माता या धाय को चाहिए कि शीशी का दूसरा सिरा पकड़े रहे।

बच्चे को सारा दूध पीने में बीस मिनट से अधिक समय न लगना चाहिए। यदि अधिक समय लगता है तो निपिल का छेद बहुत छोटा है या दूध ठीक नहीं बना है। यदि बच्चा दूध बहुत जल्दी पी लेता है तो निपिल का छेद बहुत बड़ा है और उसे तुरंत ही कै हो जायगी।

दूध की बोतल या शीशी को स्वच्छ रखना आवश्यक है

जिस शीशी से दूध पिलाया जाय उसको बहुत साफ रखना चाहिए। दूध पिलाने के बाद शीशी को ठंढे पानी से धो डालना चाहिए और उसे साधारण सोडे के पानी में (२ सेर जल में $\frac{1}{2}$ छटाँक सोडा) रख देना चाहिए। दिन में एक बार दूध की सारी बोतलें ब्रुश से भीतर और बाहिर की ओर साफ कर देनी चाहिएँ। साबुन के पानी से धोकर १५ मिनट तक इन बोतलों को साधारण पानी में उबालना चाहिए। इनको ठंढा करने पर इनमें बच्चे को पिलाया जानेवाला दूध

भरना चाहिए और फिर रूई से मुँह बंद करके रिफ्रेजरिटेर में रख देना चाहिए।

निपिल लेते समय ठीक प्रकार से देख लेना चाहिए कि उनका आकार और छेद इत्यादि ठीक है। कई प्रकार के निपिल बाज़ार में मिलते हैं।

निपिल की स्वच्छता

जिनका आकार लम्बे कोण के सदृश हो या जिनका अग्र भाग बड़ा हो वे अच्छे नहीं हैं। प्रयोजन यह है कि जहाँ तक हो सके, उनका आकार स्तनों के समान होना चाहिए। निपिल के अग्र भाग के बड़े होने से बच्चा कै कर देता है; क्योंकि ऐसे निपिल से उसका सारा मुँह भर जाता है और गला रूँधने लगता है। जो निपिल "एंटी-कोलिक" के नाम से बिकते हैं उनका आकार बहुत ठीक होता है। "रेग्राम के एक्सपोर्ट कालिटी" के निपिल भी बहुत अच्छे होते हैं। ये बाज़ार में बड़े दवाईखानों में मिल सकते हैं।

दूध पिलाने के पश्चात् निपिल को भली भाँति मल कर धोना चाहिए। पहले उन्हें बाहर की ओर स्वच्छ करना चाहिए; उसके बाद उन्हें उलट कर भीतर की ओर से धोना चाहिए। साफ करने के पश्चात् निपिल को एक चौड़े मुख की शीशी में जिसमें बोरिक एसिड का जल भरा हो, रख देना चाहिए। कभी कभी निपिल को लेकर जल में उबाल लेना चाहिए। शीशी की भाँति कई निपिल भी काम में लाने चाहिएँ। वास्तव में प्रत्येक समय के लिये एक भिन्न निपिल होना चाहिए। जब अधिक

समय के प्रयोग से निपिल नरम हो जांय तो उनको फेंक देना चाहिये।

निपिल का छेद कैसा होना चाहिये

निपिल के छेद की ओर भी ध्यान देना चाहिए। छेद न बहुत छोटा होना चाहिए न बड़ा। सब से उत्तम यह है कि बिना छेदवाले निपिल को मोल लेना चाहिए और तब आवश्यकतानुसार एक गरम सुई से उस में छेद बना लेना चाहिए। छेद ऐसा होना चाहिए कि उससे दूध बूँद बूँद करके गिरे, धारा न बहे।

चार महीने के पश्चात् प्रोटीन की मात्रा बढा देनी चाहिये।

ज्यों ज्यों बच्चे की आयु बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती जाती हैं। जो सारिणी ऊपर दी गई है, उसके अनुसार बना हुआ भोजन बड़े बच्चों के लिये काफ़ी नहीं है। उसमें प्रोटीन का भाग कम है। इस समय प्रोटीन बढ़ाना आवश्यक है। छोटी अवस्था में वसा के $\frac{१}{३}$ प्रोटीन था। अब अर्थात् चार महीने के पश्चात् वसा का भाग आधा होना चाहिए। इसके लिये गौ का ७% का दूध प्रयोग करना चाहिए। इसको बनाने का उपाय प्रथम ही बताया जा चुका है। बोतल में रखे हुए दूध के ऊपरी भाग में ७% वसा होती है। बस इसी को प्रयोग करने से प्रोटीन वसा का आधा हो जायगा। भोजन उसी प्रकार तैयार कर लेना चाहिए जैसा कि १०% दूध

से किया था। जब बच्चा दो एक महीने और बड़ा हो तो उस में जौ इत्यादि भी मिलाया जा सकता है।

भिन्न भिन्न वस्तुओं की कितनी मात्रा होनी चाहिए।

	१	२	३	४	५
७% दूध	$३\frac{१}{२}$ छटाँक	४ छ०	$४\frac{१}{२}$ छ०	४ छ०	$५\frac{१}{२}$ छ०
दुग्धोज शक्कर	$\frac{१}{२}$ "	$\frac{१}{२}$ "	$\frac{१}{२}$ "	$\frac{१}{३}$ "	$\frac{१}{३}$ "
चूने का पानी	$\frac{१}{२}$ "	$\frac{१}{२}$ "	$\frac{१}{२}$ "	$\frac{१}{२}$ "	$\frac{१}{२}$ "
उबला हुआ पानी	६ "	$५\frac{१}{२}$ "	५ "	$२\frac{१}{२}$ "	$१\frac{१}{२}$ "
जव का पानी	०	०	०	२ "	$२\frac{१}{२}$ "

इसी सारिणी के अनुसार जितना चाहे भोजन बना सकते हैं। प्रथम सारिणी और इस सारिणी में भी केवल १० छटाँक का हिसाब दिया है। यदि १५ छटाँक बनाना हो तो प्रत्येक वस्तु की मात्रा को ड्योढ़ा कर दे। २० छटाँक बनाने में दुगुना कर दे।

अधिक भोजन किस प्रकार बनाया जाय

इस सारिणी का भी प्रयोग पहले ही की भाँति करना चाहिए। दूसरी सारिणी का भोजन नं० १ प्रथम सारिणी के भोजन नं० ५ के पश्चात् आरम्भ होना चाहिए। एक सप्ताह या दस दिन के पश्चात् न० २ आरम्भ कर देना चाहिए। दो

सप्ताह के पश्चात् नं० ३ आरम्भ हो सकता है। नं० ३ से ४ तक पहुँचने में अधिक समय लगना चाहिए। नं० ४ या नं० ५ पर पहुँच कर दो या तीन महीने के लगभग ठहरना चाहिये। आवश्यकता हो तो भोजन की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए, किन्तु भिन्न भिन्न वस्तुओं का हिसाब वही रहना चाहिए।

जब बच्चा एक वर्ष का हो जाता है तो उसकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। इस समय बच्चा, जो वस्तु उसे मिल सकती है, लेने का उद्योग करता है। बालक की बहुधा आदत होती है कि जो कुछ भी उसके हाथ में आ जाता है, उसे वह मुँह में रख लेता है। माताएँ भी लाड़ से भोजन की अनेक वस्तुएँ उनके हाथ में दे देती हैं अथवा खिलाने का उद्योग करती हैं। पूरी पकवान इत्यादि के टुकड़े इस प्रकार उसके आमाशय में पहुँचकर उसको रोगी बना देते हैं। बच्चे के पाचक अंग इतने मज़बूत नहीं होते कि इन वस्तुओं को पचा सकें। विशेषकर गर्मी के दिनों में इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और इसी से बच्चे को दस्त आने लगते हैं। माता पिता या अन्य कुटुम्बियों को यह समझना चाहिए कि बच्चों को अधिक खिलाना या गरिष्ठ स्वादिष्ट भोजन देना जिनसे यथार्थ लाभ तो बहुत कम हो केवल रसास्वादन ही जिनका प्रयोजन हो, बच्चों को प्यार करना नहीं है, किन्तु उनके साथ शत्रुता करना है। उनका सब से उत्तम लाड यही है कि उनको ऐसा भोजन दें जो

उनके शरीर को दृढ़ करे और जल्दी हजम हो और उतना ही दें जितना कि वे पचा सकें।

एक वर्ष की अवस्था होने पर यह आवश्यक है कि बच्चे के भोजन में प्रोटीन की मात्रा बढ़ा दी जाय। उस समय से साधारण दूध बच्चे को दिया जा सकता है। किन्तु एक दम से साधारण दूध आरम्भ नहीं करना चाहिए। सारिणी २ के भोजन नं० ५ से धीरे धीरे बच्चे को साधारण दूध पर लाना चाहिए। जहाँ पहले दिन में छः वार बनाया हुआ दूध दिया जाता है, वहाँ अब पाँच वार बना हुआ दूध और एक वार साधारण दूध जिसमें जव का पानी मिला हुआ हो, देना चाहिए। कुछ दिन के पश्चात् दो वार साधारण दूध और चार वार वना हुआ दूध देना उचित है। इसी प्रकार साधारण दूध की मात्रा बढ़ानी और बने हुए दूध की मात्रा घटानी चाहिए। कुछ दिनों में बच्चे का भोजन केवल साधारण दूध रह जायगा। यह परिवर्त्तन दो या एक सप्ताह के अन्तर पर करना चाहिए। उसी प्रकार जौ के पानी की मात्रा भी घटा देनी चाहिए। पहले आरम्भ में तीन छटाँक दूध में एक छटाँक जौ का पानी मिलाया जाता है। कुछ दिन के पश्चात् $3\frac{1}{2}$ छटाँक दूध में एक छटाँक जौ का पानी मिलाते हैं। इसी प्रकार जौ के पानी की मात्रा कम करते हुए अन्त में साधारण दूध देते हैं। १४ या १५ मास की अवस्था से पूर्व ऐसा नहीं करते। जब बच्चे बहुत हृष्ट पुष्ट होते हैं तब कभी कभी

१२ या १३ मास पर भी उनको शुद्ध दूध दिया जा सकता है।

दूध कब तक बच्चे को देना चाहिये

साधारणतः पाँच व छः मास तक बच्चे को केवल दूध ही पर रखना चाहिए। यदि बच्चे के शरीर में भली भाँति संतोषजनक वृद्धि हो रही है तो ग्यारह या बारह मास तक दूध ही जारी रखना चाहिए। कुछ बच्चों को गौ का दुध माफ़िक नहीं आता। उनको दूसरी वस्तुएँ आरम्भ करवा देनी चाहिएँ।

जौ, गेहूँ, अरारोट, जई इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए।

जौ, गेहूं, अरारोट जई, इत्यादि का दलिया

इन वस्तुओं का दलिया बनाकर बच्च को देना चाहिए। पहले दलिया पतला होना चाहिए। उस में जल का भाग अधिक रहे। ज्यों ज्यों बच्चे की अवस्था बढ़ती जाय त्यों त्यों दलिया भी गाढ़ा किया जा सकता है। सारिणियों में जो जौ का पानी लिखा है, उसे भी दलिया ही बनाना चाहिए। दूध और दलिये को साथ न बना कर दोनों को अलग अलग बनाना उचित है। बनाकर दोनों को मिला देना चाहिए।

इन वस्तुओं का प्रयोग

इन वस्तुओं में पोषक शक्ति काफी होती है। पानी के साथ उबालने से श्वेतसार गल जाता है, जिससे वह भले प्रकार पच जाता है। प्रोटीन भी जल्दी पच जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये वस्तुएँ, आमाशय में जो दूध जम जाता है, उसके पचाने में सहायता देती हैं। कुछ बच्चों के ये वस्तुएं बहुत माफ़िक आती हैं, उनको

बहुत लाभ होता है। किन्तु कुछ बच्चों को उनसे हानि होती है। उनका पाचन ख़राब हो जाता है। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिनको न लाभ होता न हानि। जिनको हानि होती हो अथवा जिनको कुछ लाभ न होता हो, ऐसे बच्चों के भोजन में इन वस्तुओं को सम्मिलित न करना चाहिए।

कौन सी अन्य वस्तुएँ भोजन में मिलाई जा सकती हैं।

नारंगी, या अंगूर का रस. अंडे की सफेदी, अलबूमन का जल, (Albumen water) या मांस का रस भोजन में सम्मिलित किया जा सकता है।

नारंगी और अंगूर का रस।

नारंगी का रस नारंगी की फाँकों को दबाकर निकाला जाता है। फाँकों को अलग अलग करके उनको छीलकर बीज निकाल देने चाहिएँ। तब एक महीन वस्त्र के टुकड़े में रखकर उनको दबाकर रस निकलना चाहिए। यह रस स्वादिष्ट और हितकर होता है। इसके पीने से चित्त प्रसन्न होता है। स्कर्वी इत्यादि रोगों में यह बहुत लाभदायक होता है। यह क्षुधा को बढ़ाता और पाचन को ठीक करता है। इससे बच्चे को कब्ज़ नहीं रहने पाता।

जब इसे देना हो तो सदा ताज़ा बनाना चाहिये। एक बार बनाकर रखने से इसके बिगड़ जाने का डर है। यदि बच्चे को कोई बना हुआ भोजन जैसे एलनबरी का डाएट इत्यादि दिया जाता हो तो उसके साथ नारंगी या अंगूर

का रस अवश्य देना चाहिए। यह रस दो छोटे चम्मच से आरम्भ करना चाहिए। कुछ दिनों के पश्चात् एक बड़ा चम्मच कर देना चाहिये। तीन या चार बड़े चम्मच तक रस की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। भोजन के एक घंटे पूर्व इसको देना चाहिए।

जो बच्चे केवल दूध ही पर भली भाँति बढ़ते हैं, उनको इसकी आवश्यकता नहीं है। जिनके शरीर में दूध से उन्नति नहीं होती, रंग पीला होता है, उनके लिये यह वस्तु बहुत लाभदायक है। गरमी के दिनों में बच्चों को जब दस्त आने लगते हैं और उनकी ऐसी दशा हो जाती है कि शरीर का सारा मांस सूख जाता है और रंग पीला पड़ जाता है, उस समय मांस का रस बहुत लाभ करता है। ऐसे बच्चों को रस देना भोजन नहीं है किन्तु ओषधि है। जो बच्चे कमज़ोर हों उनको भी यह रस पाँचवें या छठे मास से देना चाहिए। दो छोटे चम्मच से आरम्भ करके एक वर्ष की अवस्था तक तीन या चार बड़े चम्मच तक मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।

मांस का रस

अंडा कमज़ोर और ऐसे बच्चों के लिये जिनके शरीर में रक्त की कमी हो, बहुत उत्तम है। यह रक्त को बढ़ाता है और जल्दी हजम होता है। अतएव जिन बच्चों की पाचन शक्ति कमज़ोर है, उनको अंडे की सफेदी देनी चाहिए। छः मास की अवस्था पर आधे अंडे

अंडा

की सफेदी देनी चाहिए। वर्ष के समाप्त होते समय तक पूरा अंडा आरम्भ कर देना चाहिए।

अलवूमन का जल

अलवूमन जल अंडे की सफेदी से बनता है। एक अंडे की सफेदी को पाँच छटाँक जल में मिलाकर १५ मिनट तक फेंटकर छान लेना चाहिए। यही अलवूमन जल होता है। इसमें थोड़ा सा नमक मिलाया जा सकता है। जब कै आती हो अथवा दस्त आते हों या किसी दूसरे रोग से बच्चा बहुत कमजोर हो गया हो, उस समय यह जल बहुत गुण करता है।

पेप्टोनाइज्ड दूध

बच्चों को विरेचन के समय में जब दूध हज़म नहीं होता, दस्त में दूध की फुटकें निकलने लगती हैं तब इस बात की आवश्यकता होती है कि दूध को पहले ही से पचा दिया जाय; अर्थात् ऐसी ओषधि मिला दी जाय कि दूध जो आमाशय में जमता है, वह बहुत हलका और बहुत थोड़ा जमे। जिस दूध में औषधि द्वारा ये गुण उत्पन्न कर दिये जाते हैं, उसको पेप्टोनाइज़्ड दूध कहते हैं। १० छटाँक साधारण दूध में पेप्टोनाइज़िंग चूर्ण का बीस ग्रेन मिलाया जाता है (Extractum Pancreaticum gr. V, Soda Bicarb gr. XV)

बाज़ार में यह वस्तु दवाईखानों में चूर्ण या टिकली के रूप में बहुत मिलती है। यह मात्रा साधारण दूध के लिये है जिसमें जल नहीं मिलाया गया है। यदि पीछे दी हुई

सारिणियों के अनुसार दूध बनाया गया हो, तो औषधि की आधी मात्रा काफ़ी है।

जब दूध को इस प्रकार बनाना हो तो दूध को एक शुद्ध बर्तन में रखकर उसमें चूर्ण मिलाना चाहिए। चूर्ण को पहले एक चम्मच दूध में अलग घोल लेना चाहिए और फिर उस दूध को बाक़ी दूध में मिलाना चाहिए। इस दूध की बोतल या बर्तन को एक दूसरे बरतन में जिसमें जल भरा हो, रखकर उसे अग्नि पर चढ़ा देना चाहिए। जब पानी उबलने लगे तो बरतन को आग पर से उतारकर नीचे रख देना चाहिए जिसमें दूध भी ठंढा हो जाय। उत्तम यह है कि आग पर न रख कर पानी पहले ही गरम कर लेना चाहिए। लगभग ११० फै० की उष्णता के जल में दूध की बोतल को दस से बीस मिनट तक रहने देना चाहिए।

दूध के प्रोटीन को किस प्रकार पचाना चाहिए

इससे प्रोटीनों का पूर्ण पाचन (Complete peptonisation) नहीं होता, केवल आधा (Partial Peptonisation) पाचन होता है। यदि चूर्ण मिलाकर दो घंटे तक गरम जल में दूध को रख दिया जाय तो पूर्ण पाचन हो जायगा।

आधा पाचन

पूर्ण पाचन

इस प्रकार बनाए हुए दूध का स्वाद उत्तम नहीं रहता। जो दूध केवल १० या २० मिनट तक गरम जल में रक्खा जाता है, उसमें तो अधिक परिवर्त्तन नहीं होता; किन्तु जिसको एक या दो घंटे तक

दूध का स्वाद

रखना पड़ता है, वह अच्छा नहीं रहता। जिन बच्चों को शुरू ही से यह दूध दिया गया है, वे तो किसी प्रकार की आपत्ति नहीं करते; किन्तु जो बच्चे बड़े हो गए हैं, वे पहले तो इस दूध को पसन्द नहीं करते, किन्तु कुछ दिन पीने पर उनकी आदत पड़ जाती है।

ऊपर जो दो सारिणियों में भोजन का हिसाब बताया गया है, वह रोगी बच्चों के लिये नहीं है, साधारणतः तन्दुरुस्त बच्चों के लिये है। रोग के चिह्न प्रकट होने पर भोजन में परिवर्त्तन करना आवश्यक है जिसका वर्णन आगे किया जायगा।

सदा हलके भोजन से आरम्भ करना चाहिए

भोजन सदा नं० १ या नं० २ से आरम्भ करना चाहिए और धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए। इस बात का ध्यान विशेष कर उन बच्चों के साथ रखना चाहिए जिनको जन्म ही से यह भोजन मिला है अथवा जिनकी पाचन शक्ति कमज़ोर है। जिनको माता का दूध छुड़ाकर यह दूध आरम्भ कराया गया है, उनको सदा उनके शरीर और अवस्था के अनुसार जो भोजन मिलना चाहिए, उस से हलका भोजन आरम्भ करवाना चाहिए। समान अवस्था पर जिस बच्चे ने जन्म से यह दूध पिया है, वह दूसरे बच्चे की अपेक्षा जिसको माता का दूध छुड़वा कर यह भोजन आरम्भ करवाया गया है, अधिक ऊँचे नम्बर का भोजन कर सकता है। दूसरा बच्चा इसी भोजन से

बीमार हो जायगा। सदा हलके भोजन से आरम्भ करके भारी की ओर जाना चाहिए।

भोजन को बढ़ाना आवश्यक है

भोजन को बढ़ाना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि आरम्भ में हलके भोजन का प्रयोग करना। भोजन बढ़ाते समय सदा बच्चे की आवश्यकता और उसकी दशा का ध्यान रखना चाहिए। प्रथम दिनों में संभव है कि प्रत्येक चौथे या पाँचवें दिन भोजन बढ़ाना पड़े। किन्तु जब नं० ४ या ५ पहुँच जायगा तब वहाँ बहुत दिनों तक ठहरना पड़ेगा। कदाचित् दो मास के बाद भी भोजन न बढ़ाया जा सके।

प्रथम दिनों में जब नं० १ या २ भोजन बच्चे को दिया जाता है तो उसको कब्ज रहता है। इसमें कोई घबराने की बात नहीं है। जब भोजन बढ़ेगा तो यह शिकायत दूर हो जायगी। ऐसे समय में यदि कोई दवा दी जायगी तो उससे पाचन बिगड़ जायगा।

यदि दस्त आने लगे या कोई और रोग हो जाय तो भोजन को तुरंत हलका और कम कर देना चाहिए। जब तक रोग रहे, उस समय तक चिकित्सक की आज्ञा के अनुसार भोजन हलका रखना चाहिए। जब भोजन रोग के पश्चात् बढ़ाया जाय, तो बहुत धीरे धीरे और सावधानी से बढ़ाना चाहिए। विरेचन से अच्छे होने में बच्चों को प्रायः बहुत दिन लग जाते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि कम भोजन से कभी

अधिक भोजन से हानि

उतना कष्ट नहीं होता, जितना अधिक भोजन से होता है। शरीर उतना ही भोजन ग्रहण करता है जिससे उसकी आवश्यकताएँ पूरी हो जायँ। इससे अधिक भोजन बच्चे के लिये एक भार होता है जो अँतड़ियों में जमा होकर सड़ता है और वायु उत्पन्न करता है। यदि और अधिक दिनों तक भोजन अँतड़ियों में एकत्र रहता है तो उस से बच्चा नाना प्रकार के कष्ट पाता है। बच्चा बेचैन रहता है, चिड़चिड़ा हो जाता है, उसे ठीक निद्रा नहीं आती, शरीर में वृद्धि नहीं होती अथवा शरीर दुबला हो जाता है। इससे यह समझा जा सकता है कि बच्चे को काफ़ी भोजन नहीं मिल रहा है। ऐसा समझकर यदि भोजन बढ़ाया जाय तो उस से उलटा ही परिणाम होगा।

साधारण बच्चे भूख से अधिक नहीं खाते। अधिक खाने

क्या बच्चा भूख से अधिक भी खाता है?

की आदत बच्चों में धीरे धीरे पड़ जाती है, यहाँ तक कि वे भूख से दुगुना भोजन कर सकते हैं। कुछ बच्चों को ऐसी आदत पड़ जाती है कि उनके सामने जो कुछ भी और जिस समय भी आ जाय, वह सदा खाने को तत्पर रहते हैं। यह केवल आदत का परिणाम है। उनकी भूख उतनी नहीं है। उनका पाचन कभी ठीक नहीं होता। यह आदत बहुधा उन्हीं बालकों में देखी जाती है जो पाचन के किसी रोग से ग्रस्त रहते हैं। इस-

लिये ऐसे बच्चों में यह नहीं मालूम किया जा सकता कि उनकी भूख कितनी है। उनको उनकी अवस्था और शरीर के अनुसार भोजन देना चाहिये।

बच्चों को भोजन देने में मुख्यतया तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए--

१—आमाशय की अवस्था।

२—अच्छी तंदुरुस्तीवाले उसी अवस्था के बालक को कितना भोजन मिलता है।

३—किस भोजन से साधारणतः बच्चे तन्दुरुस्त रहते हैं।

निम्नलिखित सारिणी में यह दिखाया है कि कितना भोजन कितने समय के अन्तर पर कितनी बार भिन्न भिन्न अवस्था के बच्चों को देना चाहिए।

अवस्था	दिवस में भोजन का अन्तर	रात्रि में भोजन	२४ घंटे में भोजन	एक बार के भोजन की मात्रा	२४ घंटे में कुल भोजन
१ से ७ दिन	२ घंटे	२ बार	१० बार	$\frac{१}{२}$—$\frac{३}{४}$ छटाँक	५—७$\frac{१}{२}$ छटाँक
२ और ३ सप्ताह	२ ,,	२ ,,	१० ,,	$\frac{३}{४}$—१$\frac{१}{२}$,,	७$\frac{१}{२}$—१५ ,,
४ और ५ सप्ताह	२ ,,	१ ,,	१० ,,	१$\frac{१}{२}$—२ ,,	१६—१८ ,,
६ सप्ताह से ३ मास	२$\frac{१}{२}$,,	१ ,,	८ ,,	२—२$\frac{१}{२}$,,	१३—२० ,,
३ से ५ मास	३ ,,	१ ,,	७ ,,	२—३ ,,	१४—२१ ,,
५ से ६ मास	३ ,,	०	६ ,,	२$\frac{१}{२}$—४ ,,	१५—२३ ,,
६ से १२ मास	४ ,,	०	५ ,,	३$\frac{१}{२}$—४$\frac{१}{२}$,,	१८—२४ ,,

दिन का समय प्रातः काल के ७ बजे से रात्रि के १० बजे तक समझना चाहिए और रात्रि का समय १० बजे शाम से प्रातःकाल के ७ बजे तक।

यदि बच्चा भोजन के समय अथवा भोजन के पश्चात तुरन्त ही कै करे तो क्या करना चाहिए।

भोजन के पश्चात् तुरंत ही कै करने का कारण यह है कि बच्चे ने भोजन अधिक किया है अथवा बहुत जल्दी किया है, दूध पीने में जितना समय लगना चाहिए उससे बहुत थोड़े समय में भोजन कर लिया है। निपिल का बड़ा छेद इसके लिये उत्तरदायक हो सकता है। यदि बच्चे को ऐसे वस्त्र पह-नाए गए हैं जो बहुत तंग हैं जिनसे उसका पेट दब रहा है तो भी बच्चा कै कर देगा।

जब बच्चे का आमाशय ठीक काम नहीं करता, मन्दाग्नि हो
जाती है तब भी कै आती है। ऐसी दशा में रोग की औषधि
करनी चाहिए। भोजन में वसा और शकर की मात्रा कम
कर देनी चाहिए। १०% दूध का प्रयोग न करके ७% दूध
काम में लाना चाहिए। यदि रोग अधिक तीव्र हो तो साधा-
रण दूध इस्तेमाल करना चाहिए। इस प्रकार वसा का भाग
कम किया जा सकता है। शकर कम करने के लिये जितनी
शकर ऊपर बताई गई है, उतनी न मिलानी चाहिए, उससे
आधी कर देनी चाहिए। १, छटाँक दूध में आधी छटाँक
दुग्धाज शकर के स्थान में केवल ¼ छटाँक ही मिलाना काफी

है। साथ में चूने के पानी की मात्रा दुगनी कर देनी चाहिए। भोजन के समय में अन्तर भी बढ़ा देना चाहिए।

पेट का फूलना व खट्टी डकार आना।

बच्चों के पेट में वायु के बहुत बनने का भी जिससे पेट में दरद होता है और पेट फूल जाता है अथवा डकार आने लगते हैं, शकर ही कारण है। जब ऐसी दशा हो तो शकर की मात्रा कम कर देना उचित है।

पेट में दरद होना

पेट में वायु के एकत्र होने से दरद होने लगता है। जब प्रोटीन ठीक प्रकार से नहीं पचता तब उस से वायु होती है। उसके न पचने ही के कारण पेट में दरद होता है। प्रोटीन कम करने के लिये दूध को और पतला कर देना चाहिए। जिस अवस्था में नं० ५ भोजन दिया जाना चाहिए उस समय नं० ४ व नं० ३ ही का प्रयोग करना उचित है। पेप्टोनाइज़्ड दूध से भी दरद जाता रहेगा।

दस्त में जो बहुधा दूध की फुटकियाँ सी दिखाई देती हैं, उनका भी कारण प्रोटीन का न पचना है। ऊपर कहे अनुसार ही इसका भी इलाज करना चाहिए।

यदि बच्चे को कब्ज रहे तो क्या करना चाहिए।

जब बना हुआ दूध आरम्भ कराया जाता है तब बच्चे को कुछ दिनों तक, जब तक नं० १ व नं० २ भोजन मिलता है, कब्ज रहता है। जब भोजन बढ़ा दिया जाता है तब कब्ज जाता रहता है। जिनको स्वभाव ही से कब्ज रहता है उनका ठीक

होना कुछ कठिन होता है। अधिकतर इसका यही कारण होता है कि दूध में प्रोटीन का भाग अधिक होता है और वसा का कम। ७% व १०% दूध पीनेवाले बच्चों की अपेक्षा साधारण दूध पीनेवाले बच्चों को कब्ज अधिक रहता है। ऐसे बच्चों के दूध में वसा का भाग बढ़ा देना चाहिए। क्रीम का अधिक प्रयोग करना चाहिए। कभी कभी दुग्धोज के स्थान पर साधारण शक्कर का प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है। नारंगी के रस का पहले ही वर्णन किया जा चुका है। बच्चों के लिये यह हलके जुलाब का काम करता है।

जब बच्चे को किसी प्रकार का कोई रोग हो जाय जैसे जुकाम खाँसी इत्यादि, तब दूध को सदा पतला कर देना चाहिए अर्थात उसमें अधिक पानी मिलाना चाहिए। सदा उबले हुए पानी का प्रयोग करना उत्तम है।

तीव्र रोग अथवा क़ै व दस्तों की दशा में भोजन कैसा होना चाहिए।

जब बच्चे को कोई तीव्र रोग हो जाय, जैसे निमोनिया इत्यादि, तब भोजन सदा चिकित्सक की आज्ञा के अनुसार बनाना चाहिए। दूध को पतला करना और वसा का भाग कम करना आवश्यक है। पेप्टोनाइज़्ड दूध का चिकित्सक की आज्ञा के अनुसार प्रयोग करना चहिए। यदि क़ै बहुत होती हो, ज्वर भी हो और पेट में दरद भी हो तो एक दिन के लिये सब दूध बंद कर देना चाहिए और केवल उबला हुआ पानी देना चाहिए। बारह घंटे के पश्चात् जौ का

पानी अथवा ह्व (दूध को फाड़ने से जो पतला भाग अलग हो जाता है) दे सकते हैं, किन्तु कै बंद हो जाने के २४ घंटे बाद तक दूध न देना चाहिए। जब दूध आरम्भ करें तो दूध में पानी का भाग अधिक रहना चाहिए; वसा बहुत कम होना चाहिए। चूने के पानी की मात्रा बढ़ा देने में कोई हर्ज नहीं है।

यदि पतले दस्त आते हों तो क्या करना चाहिए

यदि दो या तीन दस्त प्रति दिन आते हों तो केवल दूध को पतला और वसा को कम कर देना काफ़ी है। दूध उबाल कर दिया जाना चाहिए। किन्तु यदि दस्तों की संख्या अधिक है और दस्त बदबूदार और बुरे रंग के होते हैं तो जैसा ऊपर कहा जा चुका है, वही करना चाहिए, अर्थात् दूध बंद करके केवल उबले हुए पानी का प्रयोग करना चाहिए।

भोजन के अतिरिक्त वस्त्र, स्वच्छ वायु, आदत, पाँवों को गरम रखना, नियत समय पर भोजन मिलना, दूध की बोतलों को साफ रखना इत्यादि सब बातों का बच्चे के पाचन पर प्रभाव पड़ता है। इस कारण इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए।

दूसरे वर्ष का भोजन

दूसरे वर्ष में बच्चे को पाँच बार भोजन देना चाहिए—प्रातःकाल ६, १०, २, ६, और १० बजे रात्रि को। रात्रि के समय भोजन के लिये सोते से जगाना ठीक नहीं है। छोटे बच्चों की भाँति इनके लिये भी सारे दिन का

भोजन एक बार ही बना लेना चाहिए। डाक्टर क्लौक (Clock) ने भिन्न भिन्न अवस्था के बच्चों के लिये निम्नलिखित वस्तुओं की एक सूची बनाई है। इन महाशय के अनुसार बच्चे को पाव-रोटी देना उत्तम है।

बारह से १८ मास के बच्चे के लिये भोजन

प्रातः काल ६ बजे—नारंगी का रस $\frac{१}{२}$-१ छटाँक अथवा उबली हुई ६ अँजीर, दूध ४ छटाँक, पाव रोटी के दो टुकड़े।

" १० बजे—दूध ४ छटाँक

दिन के १ "—शोरवा ३ छटाँक (मटर का) टोस्ट पाव रोटी व बिस्कुट।

" ३ बजे—दूध ४ छटाँक

" ६ बजे—जौ सूजी वा अरारोट का दलिया—४ छटाँक दूध $\frac{१}{२}$ छटाँक दलिया।

दलिया और दूध दोनों को मिला देना चाहिए।

सेव व नासपाती का मुरब्बा,

डबल रोटी का टोस्ट, कुछ दूध के साथ।

डाक्टर क्लौक के अनुसार संध्या के ६ बजे के पश्चात् कुछ भोजन न देना चाहिए। हमारे विचार में संध्या में ६ बजे से प्रातः काल के ६ बजे तक का समय बहुत है। इतने समय तक बच्चे के आमाशय को ख़ाली रखना हानिकारक होगा। इस-

लिये अन्तिम भोजन ६ बजे न होकर १० बजे होना चाहिए। किन्तु यह भोजन बहुत हलका होना चाहिए। केवल दूध ४ छटाँक जो तीन बजे के लिये लिखा है, रात्रि के दस बजे मिलना चाहिए। ६ बजे का भोजन वैसा ही रहना चाहिए। १ बजे भोजन न देकर २ बजे देना ठीक है।

टोस्ट इस प्रकार बनाए जाते हैं। डबल रोटी की पतली पतली फाँकें काट लेते हैं और उनको गरम कर लेते हैं। मक्खन वा दूध के साथ जिस प्रकार चाहें उसका प्रयोग कर सकते हैं। डबल रोटी बहुत जल्दी हज़म हो जाती है। बिस्कुट और क्रेकर (Biscuits and crackers) भी दूध के साथ खिलाए जा सकते हैं।

जो आमिष-भोजी हैं वे मटर के शोरबे के स्थान में मांस का शोरबा प्रयोग करा सकते हैं। भोजन के पश्चात् बच्चे को उबला हुआ जल पीने को देना चाहिए।

अठारह से २४ मास के बच्चे का भोजन

६ बजे —एक नारंगी का रस,
अंजीर,
४ छटाँक दूध,
सूजी, साबूदाना, अरारोट वा
जई का दलिया (जिस में थोड़ी
शकर मिला देनी चाहिए।

१० बजे —४ छटाँक दूध

१ बजे—शोरबा–२ छटाँक, मटर का वा मांस का।
यदि चाहें तो इसमें एक अंडे की सफेदी भी मिला सकते हैं।
दूध ४ छटाँक टोस्ट वा क्रेकर के साथ।

दो से तीन वर्ष तक के बच्चे के लिये

७ बजे—एक नारंगी का रस और ६ अंजीर, गेहूँ, जौ इत्यादि का दलिया (मीठा) जिसमें दूध मिला हो। वा–
एक उबला हुआ अंडा और डबल रोटी।

१२—१ बजे—शोरबा, मांस का वा मटर का जिस में अरारोट मिलाया गया हो।
शाक - आलू - भूने हुए व छिलके के साथ उबाले हुए, मटर, पालक, वा बथुवा इत्यादि। फल—नाशपाती वा सेब के मुरब्बे की दो वा तीन फाँकें, दूध - ४ छटाँक

५—६ बजे अंगूर व सेब व अन्य मीठे फलों का गुदा।
जौ, व गेहूँ इत्यादि का दलिया।
डबल रोटी के टोस्ट, बिस्कुट, क्रेकर, दूध।

डाक्टर क्लोक की सूची के अनुसार बच्चे को बहुत समय तक बिना खाए हुए रहना पड़ता है। दो वर्ष के ऊपर के बच्चे को केवल तीन ही बार भोजन दिया गया है। यह बहुत थोड़ा है। रात्रि को ६ बजे कुछ भोजन देना आवश्यक प्रतीत

होता है। किन्तु रात्रि का भोजन बहुत ही साधारण और जल्दी पचनेवाला होना चाहिए। केवल दूध पर्याप्त है।

जहाँ पर मांस का शोरबा वा अंडा लिखा है उसको यदि चाहें तो और वस्तुओं से बदल सकते हैं। मटर का शोरबा, गेहूँ का दलिया, पतली और छुटी हुई अरहर वा मूंग की दाल मांस का स्थान ले सकती है। मांस वा अंडे में प्रोटीन अधिक होती है और ऐसे रूप में रहती है कि वह सहज में पच सकती है। दाल वा मटर की प्रोटीन इतनी आसानी से नहीं पचती। जो बच्चे कमज़ोर होते हैं वा जिनके शरीर में रक्त की कमी होती है उनको अंडा बहुत हितकर है। दो वर्ष की अवस्था हो जाने पर बच्चे के दूध के दाँत निकल आते हैं। इस समय उसको पतली दाल, दाल चावल वा खिचड़ी दी जा सकती है। किन्तु ये वस्तुएँ बच्चे की दशा देखकर देनी चाहिएँ। जिन की पाचन शक्ति उत्तम हो केवल उन्हीं को ये वस्तुएँ आरम्भ करवानी चाहिएँ। दूध की मात्रा सदा अधिक होनी चाहिए।

भोजन के कुछ विशेष पदार्थ

दूध—दूध बच्चों का मुख्य भोजन होना चाहिए। केवल यही एक ऐसी वस्तु है जो जन्म से लेकर अवस्था के बढ़ने पर भी सब आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है। बच्चे की अवस्था के अनुसार उसमें परिवर्त्तन कर देना चाहिए, जिसका पूरे रूप से पहले ही वर्णन किया जा चुका है। क्रीम में बसा का

भाग अधिक रहता है। आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग करना चाहिए।

क्रीम—कब्ज की दशा में यह बहुत गुणकर होती है। दो छटाँक तक प्रति दिन इस्तेमाल हो सकती है; किन्तु यह सदा ताज़ी होनी चाहिए। इसलिए, डबल रोटी के टोस्ट और बिस्कुट के साथ क्रीम भले प्रकार खाई जा सकती है। कुछ दशाओं में दूध बन्द कर दिया जाता है; केवल क्री ही काम में आती है। यदि इसका प्रयोग करने से किसी प्रकार का बुरा परिणाम निकले, ज़बान मैली हो जाय, साँस में किसी प्रकार की बदबू आने लगे, दस्त आने लगें तो उसको बंद कर देना चाहिए।

अंडे—जो लोग अंडे का प्रयोग करें वे लेते समय देख लें कि अंडे पुराने वा सड़े हुए तो नहीं हैं। अंडों को भूनना नहीं चाहिए। केवल उबलते हुए पानी में थोड़ी देर रखना चाहिए।

शाक—आलू बच्चे को दिये जा सकते हैं। एक दिन में एक आलू काफी है। बथुआ, पालक, सिलेरी, गाजर के छोटे छोटे टुकड़े, मटर, सेम, छोटे चुकन्दर, नरम शलज़म दिए जा सकते हैं। इनको भली भाँति भून लेना चाहिए।

अनाज—जौ, अरारोट, जई, चावल, सब का प्रयोग किया जा सकता है। इन वस्तुओं का दलिया ही उत्तम रहता है जो जल्दी हज़म हो सकता है। बड़े बच्चों को सूजी का ढीला हलुआ दिया जा सकता है।

डबल रोटी और बिस्कुट—बिना किसी भय के यह वस्तु दी जा सकती है। तीसरे वर्ष तक मक्खन इत्यादि का अधिक प्रयोग न करना चाहिए। बच्चों के लिये मक्खन से क्रीम अच्छी रहती है।

फल—फल बच्चों के लिये बहुत उत्तम होते हैं। नारंगी, अंजीर, उबली हुई नाशपाती की फाँकें भोजन के साथ ही दी जाती हैं आड़ू, अंगूर, सेब देते समय देख लेना चाहिए कि वे भली भाँति पके हुए हैं। गर्मी के दिनों में विशेष कर यह देखना आवश्यक है कि फल न कच्चे हों न बहुत पके हुए। बेर इत्यादि पाँच वा ६ छः से अधिक नहीं देना चाहिए।

कुछ साधारण नियम

उचित प्रकार से भोजन करना सब से आवश्यक है। भोजन में कुछ गड़बड़ी करने से पथ्य और उत्तम भोजन भी अपथ्य हो सकता है। भली प्रकार से भोजन करने की छोटी ही अवस्था से आदत डालनी चाहिए। निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना बहुत लाभदायक है।

१—भोजन केवल नियमित समय पर देना चाहिए। नियमित समय के उपरान्त खाने की कोई वस्तु न देनी चाहिए।

२—बच्चे को धीरे धीरे खाने की आदत डालनी चाहिए। भोजन का ग्रास भली भाँति चबाना चाहिए। निगलने का उद्योग कभी नहीं करना चाहिए। जो बच्चे बहुत जल्दी भोजन करते हैं, वे भोजन को ठीक प्रकार से नहीं

चबाते। इससे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चों की यह आदत होती है कि वह भोजन जल्दी से खा जाने का उद्योग करते हैं। इसलिये उनका भोजन ऐसा होना चाहिए जिसमें बड़े टुकड़े न रहें। शाक इत्यादि बहुत बारीक कटा होना चाहिए।

३—यदि बच्चे की खाने की इच्छा न हो तो उसे भोजन करने के लिये मज़बूर नहीं करना चाहिए। स्वादिष्ट और अपथ्य भोजन के पदार्थों से उनको नहीं ललचाना चाहिए। यदि वे भोजन के समय साधारण पथ्य भोजन को छोड़ कर दूसरा पदार्थ माँगे तो जब तक प्रथम भोजन न समाप्त कर लें तब तक कोई और भोजन न देना चाहिए। इनको खाने के पश्चात् बच्चे साधारण भोजन को पसंद नहीं करते।

४—यदि बच्चा दूध फल वा भोजन की कोई दूसरी मुख्य वस्तु न खाय और किसी अन्य वस्तु के लिये ज़िद करे तो सदा पहले उसे दूध इत्यादि ही देना चाहिए। जब वह उसे खा ले तब कोई दूसरी वस्तु दी जाय। यदि बिल्कुल ही न खाय तो दूसरे भोजन के समय तक कोई वस्तु न देनी चाहिए। और उस समय भी वही पदार्थ देना उचित है। यह नियम केवल उन्हीं वस्तुओं के लिये है जो भोजन की मुख्य वस्तु हैं जैसे दूध। रोग के दिनों में थोड़ा भोजन देना चाहिए। यदि ज्वर हो तो केवल दूध देना उचित है। यदि बच्चे को पहले से दूध ही मिल रहा है तो दूध में पानी का भाग बढ़ा देना चाहिए।

५—बच्चे को काफ़ी पानी देना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि भोजन के साथ ही दिया जाय। जिनको केवल दूध दिया जाता है उनको दूध के साथ पानी न देकर भोजन के पश्चात् पानी देना उचित है। पानी को सदा उबालकर ठंढा करने के पश्चात् स्वच्छ बर्तन में रख लेना चाहिए।

विटेमीन

भोजन के पदार्थ, प्रोटीन, वसा, लवण और जल से मिल कर बने हैं। चाहे हम किसी पदार्थ का रासायनिक विश्लेषण करें, हम को इन्हीं वस्तुओं की भिन्न भिन्न मात्रा मिलेगी। किन्तु यदि इन्हीं वस्तुओं को पर्याप्त मात्रा मिलाकर भोजन बनाया जाय और वही भोजन कुछ दिनों तक किसी मनुष्य या पशु को दिया जाय तो इस भोजन से उसके शरीर में वृद्धि नहीं होगी। यह भोजन उसकी आवश्यकता को पूरा नहीं करता। ताज़े स्वाभाविक भोजन में इन वस्तुओं के अतिरिक्त एक ऐसी वस्तु होती है जिसका भोजन में उपस्थित होना शारीरिक उन्नति के लिये आवश्यक है। इसको विटेमीन कहा जाता है।

ताज़े दूध में जो उबाला नहीं गया है, ताज़े फलों में, अनाज वा भोजन के अन्य पदार्थों में विटेमीन पाया जाता है। इन वस्तुओं को पकाने से वा किसी प्रकार की रासायनिक क्रिया करने से यह नष्ट हो जाता है। बेरी-बेरी नाम का रोग इसी कारण से होता है कि जिस चावल का प्रयोग किया जाता है, उसके ऊपर का छिलका बिल्कुल उतार दिया जाता

है। यह पालिश किया हुआ चावल कहलाता है। विटेमीन ऊपर के छिलके में रहता है। यदि चूहे को विटेमीन से रहित भोजन दिया जाय तो उसके शरीर के बाल गिरने लगते हैं, रंग मैला हो जाता है, शरीर की शक्ति जाती रहती है। अतएव विटेमीन भोजन का एक मुख्य अंग है। पकाने या भूनने से इसका नाश हो जाता है।

बच्चों के भोजन में विटेमीन की काफ़ी मात्रा रहनी चाहिए। इसी कारण नारंगी का रस बतलाया गया है। इस में विटेमीन बहुत होता है। साथ में ऐसे पदार्थों की खोज करनी चाहिए जिनको पकाने से भी उनके विटेमीन सम्पूर्णतः नष्ट नहीं होते। इस कारण जब नारंगी नहीं मिल सकती तो टमाटर का प्रयोग किया जाता है।

जिस भाँति नारंगी का रस दिया जाता है उसी भाँति टमाटर के रस भी का प्रयोग करना चाहिए। दिन में कम से कम दो चम्मच रस देना चाहिए। नारंगी में कैलशियम के लवण भी काफ़ी होते हैं। ये बच्चों के शरीर की हड्डी बनने में सहायता देते हैं।

रस को दूसरे महीने से आरम्भ कर देना चाहिए। पहले एक चम्मच छना हुआ रस पानी के साथ मिलाकर देना चाहिए, धीरे धीरे बढ़ाकर दो चम्मच कर देना चाहिए। नींबू का रस भी उत्तम है, किन्तु नारंगी के बराबर नहीं है। अनाज में भी जिनका दलिया बनाया जाता है, विटेमीन होते हैं; किन्तु

पकाने में उनका नाश हो जाता है। अंडे की ज़र्दी में काफ़ी विटेमीन रहता है।

निम्नलिखित वस्तुओं का विटेमीन पकाने से भी पूर्णतया नष्ट नहीं होता।

आलू, टमाटर, गाजर, शलजम, गोभी, बन्द गोभी। यदि शाक का रस देना हो तो इन्हीं वस्तुओं में से चुनना चाहिए।

बच्चे को किस प्रकार तौलना चाहिए।

शरीर के भार का पहले ही वर्णन किया जा चुका है। वर्ष के पहले छः महीनों में सप्ताह में एक बार और अन्तिम छः महीनों में दो सप्ताह में एक बार बच्चे को तौलना आवश्यक है। तौलने का सब से सुगम उपाय यह है कि बच्चे को उसकी डलिया में रखकर तराज़ू पर रख देना चाहिए। यह तराज़ू इस प्रकार का बना होता है कि डलिया उसके ऊपर आसानी से रक्खी जा सकती है। यह तराज़ू इसी प्रयोग के लिये विशेष कर बनाया जाता है। डलिया के भार से नीचे लगी हुई सुई घूमती है और जितना भार डलिया का होता है, उसी पर ठहर जाती है।

इन अंकों में से डलिया का भार जो बच्चे को डलिया में से हटाने के बाद तोली जा सकती है, घटा देने से बच्चे के शरीर का भार मालूम हो जाता है। लड़कों के शरीर का भार लड़कियों की अपेक्षा कुछ कम होता है।

भार किस प्रकार बढ़ना चाहिए।

जन्म लेने के पश्चात् पहले चार दिन में बच्चे का भार कुछ घट जाता है। इस के पश्चात् फिर बढ़ना आरम्भ होता है और एक सा

बढ़ता जाता है। साधारणतः एक दो छटाँक भार प्रति सप्ताह बढ़ना चाहिए। किन्तु प्रायः इस सम्बन्ध में भिन्नता पाई जायगी। यदि एक बच्चा १ छटाँक बढ़ता है तो दूसरा १½ छटाँक बढ़ेगा, तीसरा १¾ बढ़ेगा। यदि बच्चा दो छटाँक से अधिक प्रति सप्ताह बढ़े तो बहुत उत्तम है। यदि शरीर में इतनी उन्नति न हो किन्तु एक सी बढ़ती रहे अर्थात् १ वा १½ छटाँक प्रति सप्ताह बढ़े तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। यदि एक सप्ताह तो भार दो छटाँक बढ़े और फिर बढ़ना बंद हो जाय अथवा घटने लगे तो अवश्य ही उसकी फ़िक्र करना चाहिए।

भार कब नहीं बढ़ता अथवा घट जाता है।

भार का न बढ़ना वा घटना इस बात का सूचक है कि बच्चे को किसी प्रकार का रोग है अथवा उसे ठीक भोजन नहीं मिलता वा स्वच्छता का उचित ध्यान नहीं रखा जाता। बच्चों को मैला रखने से वा शुद्ध वायु के न मिलने से उनके शरीर पर उतना ही प्रभाव पड़ता है जितना कि उचित भोजन के न मिलने से। दाँत निकलते समय भी बच्चों के शरीर का भार घट जाता है। गर्मियों के दिनों में भार नहीं बढ़ता, कभी कभी घट जाता है। जाड़े के दिनों के आरम्भ होते ही भार फिर बढ़ने लगता है।

---

(६) शौच

नित्य प्रति कितने दस्त आने चाहिए।

जहाँ भोजन, स्वच्छता अथवा अन्य बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, वहाँ दस्तों को भी न भूलना चाहिए। पहले दिन बच्चे को दो वा तीन दस्त होते हैं। कभी कभी इससे भी अधिक हो सकते हैं। इसके पश्चात् अच्छे स्वास्थ्य में नित्य एक वा दो दस्त होने चाहिएँ। कुछ बच्चों को इससे अधिक दस्त होते हैं। दस्तों की संख्या से कोई विशेष बात नहीं मालूम होती। यह देखना अधिक आवश्यक है कि दस्त किस प्रकार के हैं। उनमें गाँठें वा फटे हुए दूध का भाग तो नहीं है।

दस्त कैसा होना चाहिए।

स्वस्थ दशा का दस्त पीला, नरम, एक सा होता है। उसमें गाँठें नहीं होतीं। यदि दस्त ऐसा हो तो समझना चाहिए कि पाचन उत्तम है। भोजन में लोहे का अधिक भाग रहने से दस्त काला हो जाता है। रक्त से भी दस्त काला हो सकता है। इसलिये इस बात का पूर्णतया पता लगाना आवश्यक है कि दस्त का काला रंग रक्त के कारण तो नहीं है। यदि रक्त ही के कारण है तो बच्चे की अँतड़ियों में कोई भयानक रोग उपस्थित है जिसकी चिकित्सा तुरंत होनी चाहिए।

छोटी ही अवस्था से बच्चे को नियत समय पर शौच करने की आदत डालना चाहिए। जब दो महीने की अवस्था हो तब से शौच के समय पर बच्चे को पाँवों पर बिठा कर दस्त करवाना चाहिए। दो बार दिन में, प्रातः और सायं काल, इसी प्रकार शौच करवाने का उद्योग करना चाहिए। मट्टी का एक वर्तन नीचे रख देना चाहिए जिसमें बच्चा मल त्याग करे। बच्चे के शरीर को भली भाँति बाहु का सहारा देना चाहिए। यह अधिक उत्तम होगा यदि बच्चे का सिर गोदी में रख लिया जाय और उसका शरीर बाहु पर आश्रित रहे। दोनों टाँगें हाथों से पकड़ी जा सकती हैं।

किस प्रकार नियत समय पर शौच करने की आदत डालनी चाहिये।

सम्भव है कि पहले बच्चे को उस समय पर दस्त न आवे। थोड़ा पेट मलने वा मल स्थान को खुजलाने से दस्त आ जायगा। यदि इसका भी कुछ फल न निकले तो साबुन की एक छोटी बत्ती बना कर मल स्थान के द्वारा भीतर कर देनी चाहिए। कदाचित् एक वा दो दिन ऐसा करना पड़े। बहुत थोड़े समय में बच्चे को ऐसी आदत पड़ जायगी कि तुरंत बिठाते ही उसको दस्त हो जायगा, कोई और प्रयोग न करना पड़ेगा।

यदि दस्त न हो तो क्या करना चाहिए

ऐसा करने से बच्चे को उसी समय पर शौच करने की आदत पड़ जायगी। इससे माता को तथा दूसरों को बहुत कष्ट बच जायगा। बच्चे

इस आदत से लाभ

को नियम पालन करने की इससे पहली शिक्षा मिलेगी और इसके प्रभाव से उसे अपने जीवन में अन्य कार्यों में भी नियमबद्ध होने का स्वभाव उत्पन्न होगा। यद्यपि यह एक छोटी सी बात है किन्तु इसका प्रभाव काफ़ी पड़ता है।

व्यायाम

व्यायाम सब ही के लिये लाभदायक है। बालक, युवा, वृद्ध, नर, नारी सब के लिये यह समान उपकारी है। जीवन में स्वास्थ्य की रक्षा के लिये व्यायाम से उत्तम दूसरी वस्तु नहीं है। शुद्ध स्वच्छ वायुमंडल में व्यायाम करने से शरीर का रक्त संचालन बढ़ता है। अधिक आक्सीजन भीतर जाती है। पाचन बढ़ता है। भूख लगती है। प्रत्येक अंग पुष्ट होता है।

छोटे बच्चे किस प्रकार व्यायाम करते हैं।

व्यायाम से बच्चे को भी यह सब लाभ होते हैं। किन्तु युवा मनुष्य की भांति बच्चा व्यायाम नहीं कर सकता। जब बच्चा बहुत छोटा होता है तो रोना ही उनका सब से बड़ा व्यायाम होता है। इससे उसके फेफड़े फैलते हैं और छाती चौड़ी होती है। कुछ आयु बढ़ने पर बच्चा हाथ पाँव चलाने लगता है। यह उसके लिये काफ़ी व्यायाम हो जाता है। बच्चा जितना अधिक हाथ पाँव फैलाता है उतनी ही उसके शरीर में अधिक वृद्धि होती है। बच्चे को इस अवस्था में अधिक वस्त्र नहीं पहिनाने चाहिये क्योंकि वस्त्रों के अधिक होने से बच्चा हाथ पाँव स्वतन्त्रता से नहीं हिला सकता। गर्मी के दिनों में बच्चे

को कुछ समय के लिये बिल्कुल वस्त्रहीन कर देना चाहिये, जिससे उसके शरीर के चर्म पर वायु और प्रकाश का पूरा प्रभाव पड़े।

दो सप्ताह का हो जाने पर बच्चे को गोद में लेकर टहलना चाहिये। जब बच्चा सरकने लगता है या घुटलियों चलता है तब उसे काफी व्यायाम मिल जाता है। जब बच्चा चलने का उद्योग करने लगे तब उसके लिये एक खेलने कठघरा (Play pen) बनवा लेना चाहिये। यह ज़मीन से कोई १½ वा २ फुट ऊँचा होता है। चारों ओर एक कठघरा होता है और नीचे लकड़ी के पट्टे का फ़र्श होता है। इस फ़र्श पर एक नरम बिछौना जिस पर रबर की चादर (Rubber-sheet) बिछी हो, रहना चाहिये जिससे गिरने से बच्चे को चोट न पहुँचे।

छोटी अवस्था में बच्चे को बहुत देर तक खड़े न होने देना चाहिये। अधिक समय तक खड़े होने से एक ही भाग पर बोझ पड़ेगा। इससे उसके कुरूप अथवा किसी और विकार उत्पन्न होने का डर है। बच्चे को चलाने के लिये कभी मजबूर नहीं करना चाहिये। स्वयं ही उसे चलने देना चाहिये।

छोटी अवस्था में पीठ की मांस-पेशियों को दृढ़ करने का उद्योग करना आवश्यक है। उनके दृढ़ न होने से रीढ़ की हड्डी आगे की ओर झुक जाती है। पीठ में कुब्ब निकल आता है। छाती भीतर की ओर दब जाती है। इससे फेफड़े को

भी दबना पड़ता है। उसमें इतनी वायु नहीं जा सकती जितनी कि जानी चाहिये। रक्त की पूर्ण शुद्धि नहीं होती जिससे अनेक रोगों के होने की सम्भावना रहती है। पीठ की पेशियों पर तेल की मालिश भली भाँति होनी चाहिये। बच्चे का अधिक समय लेटे ही हुए व्यतीत होना चाहिये।

निद्रा

छोटी ही अवस्था में भोजन, निद्रा और शौच में बच्चे को नियमबद्ध होने की शिक्षा देनी चाहिये। नियमित समय के अतिरिक्त बच्चे को और कभी भोजन न देना चाहिये। बच्चा भली प्रकार से जान ले कि उसे किसी और समय पर भोजन नहीं मिल सकता। इसी प्रकार निद्रा और शौच में भी बच्च को नियमबद्ध करना चाहिये। इस नियम को यदि पूर्णतया पाला जाय तो बच्चे को कोई रोग न होगा, उसका शरीर बड़ा हृष्ट पुष्ट होगा।

बच्चे की शय्या माता की शय्या से भिन्न होनी चाहिये

यह पहले ही कहा जा चुका है कि बच्चे और माता को एक ही बिस्तर पर नहीं सोना चाहिये। इससे न केवल माता ही को वरन बच्चे को भी हानि पहुँचती है। यदि भिन्न भिन्न कमरों में माता और बच्चे को सुला सकें तो और भी उत्तम है। किन्तु एक ही शय्या पर तो कभी न सुलाना चाहिये। रात्रि को जब बच्चा रोता है तब सदा माता की यही इच्छा होती है कि उसके मुँह में अपने स्तन का मुख देदें

जिससे बच्चा चुप हो जाय। यह इच्छा बहुत ही बलवती होती है जिसे रोकना कठिन हो जाता है। ऐसा करने से बच्चे का स्वभाव बिगड़ जाता है। बच्चे को दूसरे बच्चों के साथ भी कभी न सुलाना चाहिये। ऐसा करने से यदि एक बच्चे को कोई रोग होता है तो वह दूसरे को भी हो जाता है।

बच्चों को कितने समय तक सोना चाहिये

बहुत छोटा बच्चा जिसकी पाचन शक्ति उत्तम है २१ घंटे सोता है। छः महीने की अवस्था पर १६ घंटे सोता है। बच्चा जितना अधिक सोता है उतना ही उत्तम है। दिन के समय में बच्चे को केवल भोजन के समय जगाना चाहिये। स्वस्थ बच्चों को दूध पीने के पश्चात् फिर नींद आ जाती है। ऐसे बच्चे बहुत अधिक कभी नहीं सोते अर्थात् अपनी आवश्यकता से अधिक नींद नहीं लेते।

क्या बच्चे बहुत अधिक भी सोते हैं

यदि कोई बच्चा बहुत अधिक समय तक सोवे जैसे छः महीने का बच्चा २१ घंटा सोवे, तो यह मस्तिष्क के रोग का चिन्ह है और उसकी खोज और चिकित्सा होनी चाहिये। बच्चों को सोने के लिये औषधि देना उचित नहीं है। कुछ मातायें बच्चों को अफ़ीम इसलिये देती हैं कि वे रात्रि को जाग कर उनकी निद्रा में बाधा न डालें। यह बच्चों के साथ पूर्ण शत्रुता करना है। इससे अधिक दूसरा निन्दनीय कार्य नहीं है।

गाढ़ी निद्रा उत्तम स्वास्थ्य का चिन्ह है। जिन बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा होता है वे रात्रि को भली प्रकार सोते हैं। किन्तु जब उनको कोई रोग होता है तब निद्रा ठीक नहीं आती।

गाढ़ी निद्रा के न आने के क्या कारण हैं।

सोते सोते चौंकना जिन बच्चों की आदत हो जाती है अर्थात् प्रतिदिन जिनको ऐसा होता है उनके भोजन में अवश्य कुछ त्रुटि है। ठीक भोजन न मिलने से भोजन का अंश पूर्णतया पाचन नहीं होता तब भी निद्रा नहीं आती। जिन बालकों को शीशी का दूध दिया जाता है उनमें सोते सोते चौंकने का कारण अधिक दूध का पीना पाया गया है। जिनको माता का दूध दिया जाता है वे बहुधा भूखे रहने से गाढ़ निद्रा नहीं सोते। जिन बच्चों को रात्रि को तीन व चार बार भोजन दिया जाता है उनको गाढ़ी निद्रा नहीं आती। इसी कारण रात्रि को कम भोजन देना चाहिये। गाढ़ निद्रा बच्चे के लिये भोजन से अधिक आवश्यक है।

बच्चे की आदतों पर जो उसकी छोटी अवस्था में पड़ जाती है निद्रा का आना या न आना बहुत कुछ निर्भर करता है। बहुधा यह देखा जाता है कि यदि बच्चा सोते सोते रोने लगता है तो उसे तुरंत ही गोदी में लेकर टहलाया जाता है। ऐसे बच्चों को गाढ़ी नींद नहीं आती। संध्या को सोने से पूर्व बच्चों को इस प्रयोजन से भयानक कहानियाँ सुनाना कि जिससे डर कर वे आँखें न खोलें और सो जाँय अथवा

किसी भांति की उत्तेजना देना; ये सब बातें निद्रा में विघ्न डालनेवाली हैं।

यदि बच्चे का स्वास्थ्य बहुत बुरा है; शारीरिक दशा ठीक नहीं है तो भी नींद ठीक नहीं आयगी। जिन बच्चों को पाण्डु रोग हो जाता है अथवा जिनकी शारीरिक उन्नति उत्तम नहीं होती उनको निद्रा गाढ़ी नहीं होती।

यदि बच्चे को पूरा आराम नहीं मिल रहा है, उसको ठंढ लग रही है; पांव ठंढे हैं; कमरा अधिक गरम हैं; वहां शुद्ध वायु का प्रवेश नहीं है, अथवा उसके गले की ग्रन्थियां बढ़ रही हैं (Adenoids) जिसके कारण वह ठीक प्रकार से सांस नहीं ले सकता तो भी बच्चा अच्छी तरह नहीं सोयेगा।

जिस बच्चे को मन्दाग्नि का रोग है या पेट में शूल होता है वह दरद के कारण रात्रि को गाढ़ी नींद नहीं सो सकता। ऐसा बच्चा सदा चीख मार कर सोता सोता जाग उठता है। स्कर्वी में (Scurvy) भी जिसका वर्णन आगे किया जायगा शरीर में दरद होता है।

उचित नींद न आने पर क्या करना चाहिए।

जो बच्चे ठीक प्रकार नहीं सोते उनकी औषधि नींद लानेवाली दवा नहीं है। उनके रोग का ठीक ठीक निदान करना चाहिये और उसीके अनुसार उसका इलाज होना चाहिये।

बालक का रोना बंद करने के लिये उसको शय्या से उठा लेना और गोद में लेकर चारों ओर टहलना बुरा है। इससे बच्चे की आदत बिगड़ जाती है और माता को भी कष्ट होता है। ऐसे बच्चों को अलग सुलाना कठिन हो जाता है। बच्चा आशा करता है कि उसको टहला टहला कर सुलाया जायगा। इसका परिणाम यह होता है कि जब तक उसको टहलाया जाता है वह चुप रहता है; ज्योंही उसे बिस्तर पर सुलाया वह फिर रोने लगता है। यदि बच्चा इस प्रकार की ज़िद्द करे तो उसे रोने देना चाहिये। थोड़े समय तक रोने के पश्चात् स्वयं ही चुप हो जायगा। बच्चे को अधिक समय गोदी में रखने से न केवल उसकी आदत ही बिगड़ती है किन्तु उसके शरीर पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। पीठ की मांस पेशियां कमज़ोर हो जाती हैं। बच्चे को ऐसी आदत डालनी चाहिये कि सोने के लिये उसे लोरी इत्यादि की भी आवश्यकता न पड़े और थोड़ा शोर होने पर भी उसकी नींद न टूटे।

क्या बालक का रोना बंद करने के लिये उसे गोदी में लेकर टहलना उचित है।

बच्चे की शय्या कोमल और बहुत नरम न होनी चाहिये। मूंज या नारियल की जटा से भरा हुआ छोटा गद्दा ठीक है। इसके ऊपर रबड़ या वस्त्र का एक टुकड़ा रहना चाहिये और उसके ऊपर एक श्वेत चादर बिछानी चाहिये। साधारण खाट या निवाड़ का

बिस्तर कैसा होना चाहिए।

पलँग प्रयोग न करके लोहे का पलँग जिसमें लोहे के तार लगे रहते हैं काम में लाना चाहिये। पलँग इत्यादि की अपेक्षा इसे स्वच्छ रखना सहज है। शय्या पर केवल उन्हीं वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिये जो आवश्यक हैं। तकिया कोई आवश्यक वस्तु नहीं है। यदि हो तो पतला होना चाहिये। ऊंचा तकिया ठीक नहीं है। उसमें नरम रूई भरी होनी चाहिये। बच्चे के शरीर को ढकने के लिये केवल वेही वस्त्र होने चाहियें जो गरमाई रखने के लिए आवश्यक हैं, इससे अधिक वस्त्रों से बच्चे को ढकना ठीक नहीं है। बच्चे का अधिक समय सोने ही में जाता है। यदि उसके शरीर पर वस्त्रों का अधिक भार रहेगा तो वह उसकी शारीरिक वृद्धि को रोकेगा।

शय्या के चारों ओर घेर रखने के लिये लकड़ी या लकड़ी और कपड़े का परदा होना चाहिये जिसको सहज में जहां चाहें रख सकें। इसकी आवश्यकता बच्चे को सीधी तीव्र वायु से बचाने के लिये होती है। यदि लोहे के पलंग पर चारों ओर सलाखें लगी हों तो आवश्यकता के समय सिर की ओर वस्त्र का परदा लगाया जा सकता है। इस प्रकार का पलंग बच्चे के खेलने के कठघरे का भी काम देगा।

सोने के कमरे का वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

सोने का स्थान

वायु और प्रकाश का पूर्ण प्रबन्ध होना चाहिए। कमरे में किसी भांति की सील या ठंढ न होनी चाहिये। कमरे की स्थिति इस प्रकार की हो

कि वहां मकान का शोर न पहुँच सके। बहुत शोर से बच्चे की नींद में बाधा पड़ेगी। कमरे की उष्णता का ध्यान रखना आवश्यक है। शयनागार का वर्णन करते हुए इन सब बातों को विस्तारपूर्वक बताया जा चुका है।

बच्चा अधिक समय सोने में व्यतीत करता है इसलिये

खुले स्थान में सुलाना

सूर्य्य के प्रकाश का पूर्ण लाभ उठाने के लिये आवश्यक है कि थोड़े समय तक उसे कमरे से बाहिर सुलाया जाय। जाड़े के दिनों में धूप में सुलाया जा सकता है। किन्तु इस मौसम में तीन मास की आयु के पूर्व खुले हुए स्थान में सुलाना उचित नहीं है। छोटे बच्चे को सुलाने के लिये बेंत की बनी हुई टोकरी (Baby Basket) उत्तम होती है। उसको सहज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा सकते हैं।

कुछ बच्चों को मुंह खोल कर सोने की आदत होती है।

मुंह खोल कर सोना

यह आदत बहुत बुरी है और इसको छुड़ाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। कुछ बच्चों के गले की ग्रन्थियां (Adenoids) बढ़ जाती हैं। ये श्वास मार्ग में बाधा डालती हैं। बच्चा नाक द्वारा ठीक प्रकार से श्वास नहीं ले सकता। ऐसे बच्चे सदा मुंह खोलकर सोते हैं। ऐसी दशा में एक उत्तम डाक्टर की तुरन्त सलाह लेनी चाहिये। यदि आवश्यक हो तो आपरेशन करवा कर तुरंत ही उनको निकलवा देना चाहिये। इन ग्रन्थियों के रहने

से श्वास में बाधा पड़ती है, फेफड़े दुर्बल हो जाते हैं जिससे अनेक रोगों के होने का डर रहता है।

शरीर की उष्णता

बच्चे के शरीर की उष्णता में बहुत परिवर्त्तन होते रहते हैं। तनिक से प्रभाव से यह घट या बढ़ जाती है। उष्णता लेने का सब से अच्छा स्थान गुदा (Rectum: मल-स्थान) है। इस स्थान की उष्णता अन्य स्थानों की अपेक्षा एकसार रहती है। दूसरा स्थान जंघा है। गुदा की उष्णता ९८° से ९९·५° फैरनहीट तक होती है। ९७° से १००·५° फ०तक उष्णता में भिन्नता होना किसी प्रकार के विकार का सूचक नहीं है।

उष्णता को देख कर बच्चों के लक्षण का अनुमान नहीं करना चाहिये। १०० से १०२° डिगरी तक की उष्णता किसी भयानक दशा की सूचक नहीं है। हां, १०४° या इससे ऊपर बढ़ने पर अवश्य ही चिन्ताजनक है। ज्वर का अधिक समय तक रहना अच्छा नहीं है। युवा मनुष्यों की उष्णता इतने सहज में या छोटे छोटे कारणों से नहीं घटती बढ़ती। बहुधा कुछ छोटे कारणों से बच्चों की उष्णता कई डिगरी बढ़ जाती है और कुछ ही घंटे पश्चात् फिर पूर्ववत् दशा हो जाती है। इसलिये यदि थर्मामीटर में उष्णता अधिक निकले तो बहुत घबड़ाने की बात नहीं है। जिन दशाओं में युवा पुरुष को १०२ या १०१ ज्वर होगा उसी दशा में बच्चे को १०४° डिगरी का ज्वर हो जायगा।

बच्चे को चूमना

बच्चे को चूमने की प्रथा बहुत ही बुरी है। राजयक्ष्मा, डिफ्थीरिया इत्यादि भयानक रोग इस कारण बच्चों को अनेकों बार हुए हैं। जहां तक हो सके इस प्रथा को रोकना चाहिये। दूसरे बच्चों को कभी भी बच्चे को इस प्रकार प्यार न करने देना चाहिये। सम्बन्धी या दूसरे मनुष्यों को भी रोक देना चाहिये क्योंकि बच्चे पर इस का बुरा प्रभाव पड़ता है। कुछ मनुष्यों की आदत होती है कि बच्चे के ओठों पर प्यार करते हैं। यह और भी बुरा है।

आदतें

बच्चे आदत के वशीभूत होते हैं। बाल्यकाल में जो आदत बन जाती है उसका प्रभाव सारे जीवन भर रहता है। एक बार जो आदत पड़ जाती है वह फिर नहीं छूटती। इसलिये आवश्यक है कि छोटी अवस्था ही से उनको कोई बुरी आदत न पड़ने दे। सब से प्रथम, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उसको नियत समय पर भोजन करना, शौच जाना, और शयन करना सिखाया जावे यहां तक की बच्चा नियत समय के अतिरिक्त कभी कोई वस्तु न खाय। नियमबद्ध होने की शिक्षा छोटी अवस्था ही से देनी चाहिये। ज्यों ज्यों बच्चे की आदत बढ़ती जाय और उसकी समझने की शक्ति भी बढ़े त्यों त्यों उसकी आयु के अनुसार उसको दूसरी बातें सिखानी चाहियें।

छोटी अवस्था की कुछ बुरी आदतें

छोटी अवस्था में बच्चों को अपनी अँगुली व अंगुठा चूसने, नाखूनों को दांत से कुतरने, मिट्टी खाने, और रात्रि को कपड़ों पर मूत्र कर देने की आदत पड़ जाती है। बहुधा बच्चे जिनको अँगूठा चूसने की आदत पड़ जाती है वस्त्र खिलौने इत्यादि वस्तुओं को मुँह में रख लेते हैं। यह आदत बुरी है जिस से बहुत हानि हो सकती है। बहुत दिनों तक चूसने से अंगूठा कमज़ोर हो जाता है, कभी कभी आकार भी बिगड़ जाता है। इसके अतिरिक्त जिह्वा इत्यादि की नसें हर समय उत्तेजित होती रहती हैं जिससे मुख में थुक बहुत बनता है। इस से पाचन बिगड़ सकता है। अंगूठे या अंगलियों पर यदि कोई गन्दी वस्तु लग जाती है तो वह भी मुख में पहुँच जाती है।

अंगुली व अंगुठा चूसना

बच्चे अधिक भूख में भी अँगुली चूसने लगते हैं। इस लिये यह भली भाँति मालूम कर लेना चाहिये कि बच्चा भूख से तो अँगुली नहीं चूस रहा है। यदि ऐसा हो तो उसको भोजन देना चाहिये। यदि केवल स्वभाव की के कारण हाथ चूस रहा है तो उसको छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। जब बच्चा मुँह में अँगुली रक्खे उसी समय हाथ को मुँह से अलग कर देना चाहिये।

यदि आवश्यक हो तो उनके हाथों को पीठ के पीछे बाँध देना चाहिये पर यह खूब सोच समझकर करना चाहिए।

नाखून कुतरना, मिट्टी खाना

ये आदतें बच्चों को तीन वर्ष की अवस्था के बाद पड़ती हैं और अधिकतर ऐसे बच्चों में पाई जाती है जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। ऐसे बच्चों को बड़े होने पर बहुधा कोई न कोई मस्तिष्क सम्बन्धी रोग हो जाता है। मिट्टी खाने की आदत स्वस्थ बच्चों में बहुत कम पाई जाती है। ऐसे बच्चों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई विशेष रोग हो तो उसको दूर करने की औषधि होनी चाहिए। इन आदतों का छुड़ाना बहुत आवश्यक है।

वस्त्रों में मूत्र त्याग करना

रात्रि को सोने से पहले बच्चे को एक बार पिशाब करा देना चाहिए। साधारणतः दो या ढाई वर्ष के पश्चात् सोने से पूर्व पिशाब करा देने से बालक रात्रि को बिस्तर खराब नहीं करते। दूसरी आदतों की भाँति यह भी छुड़ाई जा सकती है। जब बच्चा कुछ समझने लगे तब ही से उसे इस प्रकार की आदत डालनी चाहिए कि वह रात्रि को वस्त्रों को न खराब करे। यदि ढाई या तीन वर्ष की आयु पर भी बच्चा ऐसा करे तो उसेदंड देना चाहिए। कभी कभी सजा देने से बहुत लाभ होता है। किन्तु जो अधिक बड़े होते हैं उनको इनाम देने से अधिक लाभ होता है। यदि यह देखा जाय कि वस्त्रों के खराब होने

का कारण केवल बच्चे की लापरवाही है तो उसे अवश्य ही सज़ा देनी चाहिए। बच्चे को प्रातःकाल के समय दूध पानी इत्यादि पतली भोजन की वस्तु देनी चाहिए किन्तु संध्या को ४ बजे के बाद तरल वस्तु बहुत कम देनी चाहिए। रात्रि को दस बजे बच्चे को अवश्य ही मूत्र-त्याग के लिए बिठाना चाहिए। जब बच्चे के स्वास्थ्य की दशा अच्छी नहीं होती या इन्द्रियों में कोई ऐसा विकार होता है जिससे प्रत्येक समय उत्तजेना होती रहती है तब बच्चे के मूत्र-त्याग का यही कारण होता है। इसलिए यह भी देख लेना आवश्यक है कि कोई रोग तो नहीं है।

नास्ति सत्यात्परो धर्मः—की शिक्षा बाल अवस्था ही से देनी चाहिए। Example is better than Precept.

सत्यता

बच्चे के सामने तथा उसके साथ कभी झूठ न बोलना चाहिए। बच्चों की आदत नक़ल करने की होती है। वे जैसा देखते हैं वैसा ही स्वयं करते हैं। यदि उनको सत्याग्रही बनाना है तो आवश्यक है कि उनको ऐसे मंडल में रखना चाहिए जहां झूठ का वर्ताव न हो। उनको झूठ बोल कर बहका देना पाप है। इसी झूठ से उनको झूठ बोलने की शिक्षा मिलती है। जो कुछ वे छोटेपन में अपने चारों ओर देखते हैं उसी पर उनके भविष्य का मार्ग बनता है।

आचार व्यवहार की शिक्षा

इसी प्रकार उनके आचार व्यवहार को आदर्श स्वरूप बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। छोटी अवस्था ही से जब उनमें विचार शक्ति

का विकास हो जाय, धर्म की छोटी छोटी बातें बतानी चाहिएँ बच्चे सदा कहानियों को बड़े चाव से सुनते हैं। उनके लिए विशेष कर ऐसी कहानियाँ चुननी चाहिएँ जो एक बड़े पुरुष की धार्मिक कथा हो। जैसे सत्य हरिश्चन्द्र की कथा, रामायण की कथाएं इत्यादि। छोटी छोटी कहाँनियों द्वारा उनको धर्म में निष्टावान होने, सत्य पर आरूढ़ रहने, माता पिता के आज्ञाकारी होने, परोपकर, स्वार्थत्याग, इत्यादि की शिक्षा देनी चाहिए। उदाहरण शिक्षा से सदा उत्तम होता है। कुटुम्ब के लोग जिस प्रकार के हैं बच्चा भी उन्हीं गुणों को ग्रहण करेगा। यदि कुटुम्ब में कलह होती है तो बच्चा भी कलहप्रिय बनेगा। माता पिता के अनुसार ही बहुधा बच्चे के आहार व्यवहार होते हैं। बच्चा जैसा उनको करते देखता है स्वयं भी वैसा ही करता है और उसी के अनुसार उसके आचार विचार बनते हैं। इसलिए आवश्यक है कि बच्चे को ऐसे स्थान में रखा जाय जहां वह चारों ओर धार्मिक बातें सुने और देखे। इसी समय से उस में आत्मरक्षा और आत्माभिमान के उत्पन्न करने का उद्योग करना चाहिए। उसके सामने ऐसे कार्य होने चाहिएँ जो उसको ये सब बातें सिखावें। बच्चा जो देखता है उसपर उसका प्रभाव जीवन पर्यन्त रहता है। यदि बच्चे में कोई भी ऐसी बात देखी जाय जो उसके आचारों को बिगाड़ने वाली हो तो उसे प्रेम के साथ उसके लाभ और गुण बताने चाहिएं।

उदाहरण स्वरूप कहानियां सुना कर उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ताड़ना से उलटा परिणाम निकलता है।

बच्चों के लिये का यह बहुत बड़ा और आवश्यक गुण है।

आज्ञाकारी होना

छोटे बच्चों को पूर्ण आज्ञाकारी बनाना तनिक कठिन है। उनकी स्वतंत्रता को बिल्कुल छीन लेना उचित नहीं है। बच्चों को केवल आज्ञा के अनुसार चलना सिखलाना चाहिए। किसी बात पर उनसे बहस करने से कुछ लाभ नहीं है। उनमें इतनी समझ नहीं है कि वे भला बुरा समझ सकें। उनके लिये माता पिता की आज्ञा ही प्रमाण होनी चाहिए। उसको उल्लंघन करना उनके लिए असम्भव होना चाहिए। साथ में माता पिता को भी उनको ऐसी आज्ञा न देनी चाहिए जिनको पूरा करने में उन्हें कष्ट हो। हां, यदि उनको कोई अनुचित बात करते देखें तो अवश्य ही जिस प्रकार हो सके उसे दूर करने का उद्योग करें। भर्त्सना और ताड़ना का प्रयोग उसी समय करना चाहिए जब किसी और भांति काम न चले। जहां तक संभव हो प्रेम ही से काम लेना चाहिए। जब इससे काम न चले तब प्रथम धमकाना चाहिए। उसके पश्चात् फिर सज़ा देनी चाहिए। यदि बच्चे को प्रथम ही से उचित रीति से पाला गया है तो दंड की आवश्यकता न पड़ेगी।

स्वार्थ-त्याग

मनुष्य स्वभाव ही से स्वार्थी होता है किन्तु स्वार्थत्याग मनुष्य को बहुत ऊँचे पद पर पहुँचाता है।

बचपन ही से स्वार्थत्याग की शिक्षा देनी चाहिये। परोपकार करना बच्चे को सहज में सिखाया जा सकता है। उसके हाथ से गरीबों को दान दिलवाना चाहिये। उसी ही की वस्तु उसी ही से दूसरों को जिनको आवश्यकता हो दिलवानी चाहिये। जो भी भोजन की वस्तु बच्चा बाज़ार से लावे उसे और बच्चों को भी बटवाना चाहिये। यदि बच्चा किसी जानवर को जैसे, कुत्ता कबूतर पंसद करता है तो उसे उनको रखने देना चाहिये। उनके द्वारा वह दूसरों की खबर रखना, प्रेम, मधुरता इत्यादि की शिक्षा पायगा।

बच्चों को अनुचित भय नहीं दिलाना चाहिये

बहुधा माताएं बच्चों को सुलाने के लिये अथवा रोते से बंद करने के लिये अनेक प्रकार के अनुचित भय दिखाती हैं। इसका बच्चे पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उसका हृदय कमज़ोर हो जाता है। बालक भीरु बन जाता है। बच्चे को पशु इत्यादि से किसी प्रकार का डर नहीं दिलाना चाहिये। उस को निडर और बेधड़क बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि इसी अवस्था में बच्चे के अन्तःकारण में डर बैठ जायगा तो वह सारे जीवन भर डरपोक रहेगा।

लज्जा

लड़कों में लज्जा का भाव होना अच्छा नहीं है, उनको इस प्रकार शिक्षा देनी चाहिए कि अपरचित मनुष्यों से न शरमावें; उन लोगों के साथ भी जिनको वे नहीं जानते खुल कर बात चीत करें। जिनमें

लज्जा का भाव आ जाता है वे जीवन भर अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने में हिचकते हैं। उनको सभा इत्यादि में लेजाना चाहिये; दूसरे मनुष्यों से मिलाना चाहिये।

शिक्षा

बच्चा जब से कुछ भी समझने लगता है उस ही समय से उसकी शिक्षा आरम्भ हो जाती है। सब से प्रथम शिक्षक माता और पिता होते हैं जिनका प्रभाव उसके जीवन भर नहीं जाता। इनके पश्चात् कुटुम्ब के लोगों से उसको शिक्षा मिलती है। यह शिक्षा उसको एक सज्जन या दुष्ट दोनों बना सकती है। जब बच्चा पांच या छः वर्ष का होता है उस समय स्कूल भेजा जाता है।

किस आयु पर शिक्षा आरम्भ करनी चाहिये और किस प्रकार शिक्षा देनी चाहिये।

बच्चे को छः वर्ष के पूर्व स्कूल नहीं भेजना चाहिये, न इस से पूर्व उसे किसी प्रकार की पुस्तकों द्वारा शिक्षा देनी चाहिये। उसके मस्तिष्क पर अधिक काम न डालना चाहिये। स्वयं ही उसका विकास होने देना चाहिये। उसको वस्तुएँ दिखा कर, उदाहरण सामने रख कर वस्तुओं के नाम बताने या अन्य रोचक बातें सिखाने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। बच्चा स्वयं ही हर एक बात को जिसे वह देखता या सुनता है जानने का प्रयत्न करता है। उसके मस्तिष्क से इससे अधिक कार्य लेने से उसकी शारीरिक वृद्धि पर प्रभाव पड़ेगा।

छः वर्ष की अवस्था में शिक्षा आरम्भ कराई जा सकती है।

इस अवस्था के लिये किंडर-गार्टन की विधि बहुत उत्तम है। पाठ के साथ खेल भी होता रहता है। गाना साथ होने से बच्चे को अपना पाठ बहुत रोचक हो जाता है अध्यापक को चाहिये कि जो कुछ भी बच्चे को बतावे उसका उदाहरण उसके सामने रक्खे। बच्चे प्रेम से जो बात कर सकते हैं वह डराने धमकाने से नहीं। अध्यापक ऐसा होना चाहिये जिसे सब बच्चों से अपने पुत्रवत प्रेम हो।

बच्चे का स्वास्थ्य

बच्चे के स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान देना चाहिये। उसकी शिक्षा का मूल्य उसका स्वास्थ्य न होना चाहिये। स्कूल का सारा कार्य स्कूल ही में समाप्त हो जाना चाहिये। गृह के लिये कुछ काम न देना चाहिये। स्कूल में जो समय व्यतीत होता है वही बच्चे के लिये बहुत है। जब बच्चा बड़ा हो जाय तब घर के लिये भी काम दिया जा सकता है।

बच्चों के पढ़ने की विधि ठीक होनी चाहिये

जहां और सब बातों का ध्यान रखा जाता है वहाँ इस बात का ध्यान भी रखना बहुत आवश्यक है कि बच्चों की पाठ-प्रणाली ठीक है या नहीं। बच्चों का ज़मीन पर बैठ कर और सामने स्लेट या पुस्तक को भी ज़मीन पर रख कर पढ़ना बहुत बुरा है। देखा जाता है कि कभी कभी वे इतना झुकते हैं कि पीठ एक कमान सी बन जाती है और मुँह पृथ्वी पर स्लेट के ऊपर पहुँच जाता है। इस

प्रकार से पढ़ना स्वास्थ्य के लिये बहुत बुरा है। पीठ की मांस पेशियां बहुत कमज़ोर पड़ जाती हैं और थोड़े दिनों में पीठ में एक कुब्ब सा निकल आता है। लड़के को आगे झुक कर चलने की आदत पड़ जाती है। इतना ही नहीं इस से वक्षस्थल पर भी प्रभाव पड़ता है। टाँगों की भी मांस पेशियां कमज़ोर हो जाती हैं। पालथी मार कर बहुत समय तक एक ही दशा में बैठे रहने से मांस पेशियों के एक भाग पर तो बहुत काम पड़ जाता है किन्तु दूसरे दबे रहते हैं। वे अपनी स्वाभाविक दशा में नहीं रहते।

बच्चों के लिये सब से उत्तम छोटे और नीचे स्टूल हैं। इन पर बैठने से टाँगों की मांस पेशियां अपनी स्वाभाविक दशा में रहती हैं। पीठ के और आगे की ओर की मांस पेशियों को समान काम करना पड़ता है। बच्चों के आगे जो मेज़ हो वह इतनी ऊंची होनी चाहिये कि उनको झुकना न पड़े। उनके सीधे बैठने पर मेज़ और उनकी आंखों में कम से कम १८ इंच का अन्तर रहना चाहिये। यह अध्यापक का कार्य है कि वह बच्चे को आगे की ओर बहुत न झुकने दे। उसी प्रकार पुस्तकों को आँखों के बहुत पास रखना भी हानिकारक है।

प्रकाश कैसा होना चाहिये

लैम्प के सामने पढ़ते समय लैम्प को इस प्रकार रखना चाहिये कि उसका प्रकाश नेत्रों पर न पड़ कर पुस्तक पर पड़े। इसके

लिये खुरदुरे कांच की चिमनी (Ground glass chiminey) आती है। अथवा शेड (Shades) को भी प्रयोग किया जा सकता है। शेड ऐसे होने चाहियें जो केवल नाम ही के लिये न हो किन्तु जिस प्रयोजन के लिये उनको खरीदा गया है उसे भी पूरा करें।

मोमबत्ती से पढ़ना ठीक नहीं है। इसके जलने से जो बहुत सी गैस निकलती है वह चारों ओर के वायु-मंडल को दूषित कर देती है। जिस लम्प के प्रकाश के साथ धुवाँ भी निकलता है वह पढ़ने के योग्य नहीं है। एक और ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि प्रकाश स्थिर होना चाहिये अर्थात् ऐसा न होना चाहिये कि कभी घटे और कभी बढ़े। बिजली का प्रकाश सब से उत्तम है। यह पूर्णतया स्थिर है और वायु-मंडल को तनिक भी दूषित नहीं करता, क्योंकि इससे कोई गैस नहीं निकलती। बिजली का मेज़ पर रखनेवाला लम्प भी उत्तम होता है। इस में शेड लगाया जा सकता है जो नेत्रों पर प्रकाश नहीं पड़ने देता। बिस्तर पर लेट कर पढ़ने की आदत बुरी है। इससे नेत्रों को हानि पहुँचती है।

चश्मा

जिनके नेत्र आगे चलकर खराब हो जाते हैं या जिनको चश्मा लगाना पड़ता है उनमें अधिक भाग ऐसों का होता है जिनके नेत्र पढ़ने से खराब हो गये हैं। यह शिक्षा नहीं है जिससे नेत्रों में दूषण आ गया

है किन्तु पाठ की विधि है जिसने नेत्रों को खराब किया है। यदि उचित रीति से पढ़ा जाय तो नेत्र कभी खराब नहीं होंगे।

चश्मा कब लगाना चाहिये

नेत्रों में किसी प्रकार का दोष आ गया है, दूर की वस्तु स्पष्ट नहीं दिखाई देती अथवा पास से देखने में कष्ट होता है तो तुरंत उसकी औषधि होनी चाहिये। यदि चश्मा आवश्यक है तो किसी डाक्टर की सलाह से जो नेत्र सम्बन्धी विषय में कुशल हो, उसे तुरंत लेना चाहिये। कुछ बच्चों के नेत्र जन्म ही से कमज़ोर होते हैं। उनको चश्मा लगाना बहुत आवश्यक है। ज्योंही मालूम हो कि चश्मे की आवश्यकता है त्योंही चश्मे का प्रयोग आरम्भ कर देना चाहिये। चश्मे की आवश्यकता होने पर भी उसे न लगाना या आवश्यकता न होने पर केवल शौक के लिये लगाना दोनों समान भयंकर भूले हैं। आवश्यकता न होने पर लगाने से नेत्र कमज़ोर और खराब हो जाते हैं और चश्मा आवश्यक हो जाता है। आवश्यकता होने पर जब चश्मा नहीं लगाया जाता तो नेत्रों का दोष बढ़ जाता है।

धार्मिक शिक्षा

आधुनिक स्कूलों में सब से बड़ी त्रुटि यह है कि वहां धार्मिक शिक्षा के लिये कोई स्थान नहीं है। बच्चे के लिये धार्मिक शिक्षा बहुत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त बच्चे के हृदय में उच्च भावों को उत्पन्न करने का कोई दूसरा साधन नहीं है। इसी समय से उसको धर्म में श्रद्धा और भक्ति सिखानी चाहिये। बच्चों

के कोमल हृदय में धार्मिक पुस्तकों की रोचक कथाओं द्वारा बहुत सहज में श्रद्धा उत्पन्न की जा सकती है। जिस शिक्षा-प्रणाली में धार्मिक व्यवस्था नहीं है वह शिक्षा बच्चों को देने योग्य नहीं है।

स्वास्थ्य

धार्मिक शिक्षा की भांति बच्चों के स्वास्थ्य पर भी आज कल बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता। जो छोटे बच्चे हैं उनको भी पाँच या छः घंटे तक लगातार एक स्थान में बैठ कर अपना पाठ घोकना पड़ता है। यह प्रणाली छोटे बच्चों के लिये बिल्कुल अनुचित है। कंठाग्र करने के लिये उनको कभी विवश नहीं करना चाहिये।

पुस्तकें

बहुत जल्दी पुस्तक आरम्भ कराने का उद्योग नहीं करना चाहिये। उचित अवस्था पर पहुँच कर बच्चों को उचित पुस्तक पढ़ानी चाहिए। उनके लिये पुस्तक लेते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) पुस्तक में अधिक कहानियां होनी चाहिएँ। उपदेश भी सब कहानी में रूप में हो।

(२) पुस्तकें ऐसी होनी चाहिएँ जिनकी कहानियों में धर्म की जय और अधर्म की विजय दिखाई गई हो।

(३) कहानियां प्राणी मात्र के साथ प्रेम का व्यवहार करना सिखावें। पशुओं पर दया करना और उनके साथ सहानुभूति रखने की उनको शिक्षा मिलनी चाहिए।

(४) कहानियों में किसी भयानक बात का वर्णन न हो। वे सौन्दर्य्य, प्रेम माधुर्य से परिपूर्ण हों।

(५) कहानियां ऐसी हों जो बच्चे की विचार शक्ति को बढ़ावें और उसे आत्मगौरव और जाति-प्रेम की शिक्षा दें।

यदि बच्चों को या लड़कों को कोई अश्लील या बुरी पुस्तकों को पढ़ते देखें तो उन्हें अवश्य ही रोक देना चाहिए। लड़कों को उपन्यास पढ़ने का बहुत शौक होता है। यह देखना आवश्यक है कि उपन्यास ऐसे हों जो उत्तम शिक्षा देने वाले हों। जो गन्दे उपन्यास हों उनको कदापि न पढ़ने देना चाहिए। प्रयोजन यह है कि बच्चों के सामने उत्तम से उत्तम आदर्श रखने का उद्योग करना चाहिए।

छोटे बच्चों के खिलौने

छोटे बच्चों की आदत होती है कि वे जो भी वस्तु पाते हैं उसे मुँह में रख लेते हैं। इसलिए उन के लिए खिलौने लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खिलौने ऐसे हों जो सहज में धोये जा सकें, जो स्वच्छ करने से न बिगड़ें। खिलौने लेते समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिए। (१) खिलौने चिकने होने चाहिएं जिनमें कोई नुकीला भाग न हो। (२) सहज में स्वच्छ हो सकें (३) जिनको बच्चे निगल न सकें। ऐसे खिलौने जिनमें तीव्र कोने हों या जो सहज ही में टूट जायँ अथवा साफ़ न किये जा सकें, न लेने चाहिएँ। छोटे छोटे खिलौने जिनको बालक निगल सकें अथवा जो कान या नाक के भीतर

चले जांय जैसे बटन, पैसे, चांदी के छोटे सिक्के, बालकों को देना उचित नहीं है। जिन खिलौनों पर रंग चढ़ा हो या बाल लगे हों वे भी बच्चों को न देने चाहिएँ।

अधिक आयुवाले बच्चों के लिए कैसे खिलौने होने चाहिएँ

यह ध्यान रहे कि खिलौने केवल खेल ही के लिए नहीं हैं। उनसे बहुत कुछ शिक्षा भी मिल सकती है। इसलिए अधिक आयुवाले बच्चों के लिए ऐसे खिलौने लेने चाहिएँ जो उनकी विचार शक्ति को बढ़ावें और साथ में बच्चे को आनन्द दें जैसे एँजिन, सिपाही, मट्टी के बने हुए फल, उत्तम तस्वीरें, गोलो इत्यादि। लड़कियों के लिए गुड़ियाँ, गृहस्थी के सामान का नमूना जिसमें सब छोटी छोटी वस्तु रहती हैं, सब से उत्तम हैं। कुछ ऐसे खिलौने आते हैं जिनमें बहुत से भिन्न भिन्न भाग होते हैं। उनको भिन्न भिन्न प्रकार से मिलाने से भिन्न भिन्न वस्तुएँ बन जाती है। ये खिलौने बड़े अच्छे होते हैं। खिलौनों के द्वारा बच्चों को बहुत कुछ शिक्षा दी जा सकती है। बच्चों की विचार-शक्ति या स्मरण-शक्ति, बहुत बढ़ सकती है। उनको स्वच्छता और क्रम की शिक्षा मिलती है। इसके लिए आवश्यक है कि बहुत से खिलौने हों और वे स्वच्छ किए हुए क्रम से ताक या आलमारी पर रक्खे रहें। बच्चा जब चाहे तब किसी एक के साथ खेले। उसे एक ही साथ बहुत से खिलौने न देने चाहिएँ। खिलौनों को रद्दी वस्तुओं में न डाल देना चाहिये।

इन खिलौनों के द्वारा बच्चे को वस्तुओं को सावधानी से स्वच्छ रखना, क्रम में रखना, उचित प्रकार से प्रयोग करना इत्यादि बातें सिखाई जा सकती हैं।

---

(७) बाल्यकाल के रोग

बाल्यकाल में जो रोग होते हैं, उनका कारण बहुधा माता या धाय की असावधानी होती है। उनको यह ज्ञान नहीं होता कि बच्चे को क्या और किस प्रकार का भोजन देना चाहिये, उसे कैसे स्वच्छ रखना चाहिये, आवश्यकता के अनुसार वस्त्र कैसे होने चाहिएँ। प्रथम वर्ष में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। युवावस्था में जो रोग होते हैं उनमें से बहुतों की नींव बाल्यकाल ही में माता या धाय के अज्ञान से पड़ती है।

इस काल के रोगों की चिकित्सा करना युवावस्था के रोगों की अपेक्षा अधिक कठिन है। बच्चा अपनी दशा नहीं कह सकता। उसमें बोलने की शक्ति नहीं होती। इस कारण केवल ऊपरी दशा देख कर उसके रोग का पता लगाना होता है। बालक के चिन्ह भी उसके रोग के विश्वस्त सूचक नहीं हैं। रोग के भयंकर होने पर भी चिह्न साधारण हों या साधारण रोग में चिन्ह भयंकर रूप धारण कर लें। बच्चों के रोग का ठीक ठीक ज्ञान करने के लिये अनुभव और रोगों के पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता है। निम्नलिखित बातों को ध्यानपूर्वक देखने से बच्चे की दशा का पता लगाने में बहुत कुछ सहायता मिलती है।

सारे शरीर की भली भांति परीक्षा करनी चाहिये।

साधारण चिन्ह

स्वस्थ दशा में बच्चे की देह का चर्म चिकना मुलायम गठा हुआ होता है; ढीला लटकता हुआ नहीं होता। चर्म को देखना चाहिये कि शुष्क, या खुरदरा तो नहीं है। किसी विशेष स्थान पर उष्णता तो अधिक नहीं है। देह के रंग को भी देखना चाहिये। यदि कहीं दाने निकले हो तो उनको देखना चाहिये; किस प्रकार के दाने हैं, बाहुओं को दानों के लिये अवश्य देखना चाहिये। बाहु और टाँगों को उठाने या हिलाने से किसी प्रकार का दरद न होना चाहिये। जिस प्रकार युवा मनुष्यों को ज्वर में शीत लगता है बच्चों को उस प्रकार वांयठे आते हैं और सन्नि- पात के लक्षण हो जाते हैं। बच्चों को स्वभाव से गाढ़ी निद्रा आती है। इसलिये जब उन को रात्रि में निद्रा भंग होने लगे तो समझना चाहिये कि अवश्य ही उनको कोई रोग है।

बच्चे का किसी विशेष असाधारण दशा में लेटना, जैसा पाओं को सुकेड़ कर पेट में लगा लेना, शिर को पीछे की ओर खींच लेना, चेहरे का विवर्ण होना, सुर्ख अथवा सफेद हो जाना; किसी विशेष स्थान जैसे शिर या माथे पर पसीने का आना, मुख के आकार का बिगड़ना, कराहना, चिल्लाना, मांस-पेशिओं का फड़कना, दाँतों का पीसना, श्वास का जल्दी जल्दी लेना, ये सब चिन्ह बताते हैं कि बच्चे को कोई रोग है।

नाड़ी—दो वर्ष के नीचे तक नाड़ी की गति ९० से १२० प्रति मिनट रहती है। यदि इस से बहुत कम या अधिक हो तो रोग समझना चाहिये। यदि बच्चे को ज्वर है और नाड़ी की गति १२० ही है तो समझना चाहिये कि रोग का कारण पेट की खराबी है।

श्वास

बच्चे का श्वास बहुत जल्दी घटता बढ़ता है। तनिक से कारण से घट जाता है या बढ़ जाता है। कभी बालक लम्बे लम्बे कुछ श्वास बड़ी जल्दी से ले लेता है। कभी यहां तक कि दो वा चार सेकंड के लिये सांस को बिलकुल बंद कर लेता है। किन्तु जब श्वास की असाधारण दशा कुछ समय तक बराबर वैसी ही रहे और साथ में कुछ और भी चिन्ह मालूम हों तब वे अवश्य ही रुग्न-अवस्था के सूचक हैं। जन्म से लेकर कई सप्ताह तक ३० से ५० श्वास तक प्रति मिनट आते हैं। प्रथम वर्ष में यह संख्या २५ से ३० रह जाती है। सोते समय श्वास की गति एक तिहाई या चौथाई कम हो जाती है और जागने की अपेक्षा श्वास समान गति से चलता है। श्वास में बच्चे के उदर की मांस-पेशियाँ अधिक काम करती हैं। युवा या वृद्धावस्था में वक्षस्थल की मांस-पेशियाँ श्वास लेने में सहायता देती हैं। जब बच्चे के श्वास को देखना हो या गिनना हो तो सदा उदर की मांस-पेशियों की ओर देखना चाहिये। श्वास के साथ उदर बाहिर और भीतर होता

है। रोग के दिनों में श्वास का क्रम बिगड़ जाता है और यह दशा बहुत समय तक रहती है।

मुख का आकार

मस्तिष्क के रोग में मुख के ऊपरी भाग का आकार बिगड़ जाता है। माथे में सिलवट पड़ जाती है। आँखें चौड़ी हो जाती हैं, मालूम होता है जैसे निकली पड़ती हैं; कभी ठहर जाती हैं। जब हृदय का रोग होता है तब सदा मुख के मध्य भाग पर प्रभाव पड़ता है। फेफड़े के रोगों में भी यही होता है। नथुने चौड़े हो जाते हैं। श्वास तीव्र और ज़ोर से आने लगता है। मुंह के चारों ओर एक नीला घेरा बन जाता है और आँखों के नीचे कालापन आ जाता है। जब अंतड़ियों में कुछ विकार आता है तब मुख के निचले भाग पर चिन्ह प्रगट होते हैं। गालों का रंग बदल जाता है। वे पीली या लाल हो जाती हैं। कभी कभी भीतर की ओर बैठ जाती हैं। मुंह लम्बा हो जाता है। ओठों पर कालापन आ जाता है।

जब बच्चे को मस्तिष्क सम्बन्धी रोग होता है तब वह हाथ को शिर पर रखता है, कभी कान खैंचता है, शिर को तकिये पर एक ओर से दूसरी ओर को फिराता है या हाथ पाँव पटकता है।

आमाशय या अँतड़ियों में रोग होने से बच्चा टाँगों को ऊपर की ओर खैंच लेता है, मुख चिन्तित सा दीखने लगता है और

बच्चा कपड़ों को नोचने लगता है। फुप्फुस के रोगों में बच्चा गले को पकड़ लेता है अथवा हाथ मुँह में रखने लगता है।

रोना

जब बच्चा उत्पन्न होता है तभी से रोना आरम्भ करता है। इस रोने से उसको बहुत लाभ होता है। फुप्फुस फलते हैं, छाती चौड़ी होती हैं। यह छोटे बच्च का व्यायाम है। प्रतिदिन थोड़ा रोना बच्चे के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। बच्चे का १५-२० मिनट तक रोना स्वाभाविक है। यदि बच्चा बहुत देर तक रोता रहे या बहुत बार रोवे तो यह देखना चाहिये कि उसके रोने का क्या कारण है। जो बच्चों का स्वाभाविक रोना होता है वह तेज और ऊँचा होता है; एक चीख की तरह होता है। किन्तु बीमारी या किसी कष्ट से जब बच्चा रोता है तब रोने की आवाज़ तेज नहीं होती। एक धीमा कराहना होता है जो बहुत समय तक चलता रहता है। इस भाँति का रोना दरद, भूख, गुस्से या बीमारी में होता है। कुछ बच्चों को इस भाँति रोने की आदत पड़ जाती हैं।

दरद का रोना

दरद का रोना तेज होता है। बच्चा एक साथ चीख मारता है। साथ में बच्चा जिस भाग में दरद होता है उसे खेंच लेता है। यदि टाँग में दरद होगा तो उसे पेट की ओर खेंच लेगा। मुंह बिगड़ जाता है।

भूख के कारण जो बच्चे का रोना होता है वह तेज नहीं होता, धीमा होता है। और जब तक उसे भोजन नहीं मिलता, जारी रहता है, भोजन मिलते ही बंद हो जाता है। गुस्से से जब बच्चा रोता है तब हाथ पाँव पटकता है।

भूख का रोना।

रुग्नावस्था में बच्चा कराहता है अथवा चीखता है।

रुग्नावस्था

यदि बालक केवल ज़िद से रोवे तो क्या करना चाहिये

जब बच्चों को कोई विशेष आदत पड़ जाती है जैसे गोदी में टहलना, कमरे में प्रकाश को देखना, दूध की बोतल को मुँह में रखे रहना, तब उसके पूरा न होने पर बालक बहुत समय तक रोते रहते हैं। ज़िद के पूरे हो जाने पर रोना बंद कर देते हैं। ऐसे बच्चों की ज़िद कभी पूरी न करनी चाहिये। इनको रोने देना चाहिये। जो बहुत हठी बच्चे होते हैं वे एक या दो घंटे तक रोते रहते हैं। उनके रोने की ओर कभी ध्यान न देना चाहिये। रोते रोते जब थक जायंगे और देखेंगे कि रोने से कुछ नहीं मिल सकता तो वे स्वयं ही चुप हो जायंगे। दूसरी बार २० या ३० मिनट से अधिक न रोयेंगे। तीसरी बार कभी रोने की नौबत ही न आयगी। उनकी ज़िद छूट जायगी।

जब बच्चा रात को रोवे तो यह देखना चाहिये कि उसने बिस्तरों में मूत्र तो नहीं कर दिया है, उसको किसी प्रकार का विशेष कष्ट तो नहीं है, ठंढ तो नहीं लग रही है। यदि इन

में से कोई बात हो तो उसे दूर करना चाहिये, जिससे बच्चा आराम से सो सके। यदि इस पर भी वह रोता रहे तो उसकी ओर ध्यान न देना चाहिये। ऐसे रोगों में जैसे निमोनियां, बच्चे के रोने की आवाज़ ऐसी होती है जैसे कोई दूर के स्थान में रो रहा है। आवाज रुक कर निकलती है। श्वास भीतर लेते समय एक चीख की आवाज आती है। मस्तिष्क के रोगों में तीव्र चीख निकलती है।

यदि बच्चा सीधा लेट कर श्वास न ले सके और बैठने का उद्योग करे तो फुफ्फुस का रोग समझना चाहिये। यदि बच्चा करवट पर लेटे और पाँवों को ऊपर की ओर खैंच ले तो कोई मस्तिष्क का रोग समझना चाहिये।

नेत्र

किसी तीव्र रोग में आँख की पुतलियों का एक ओर को बहुत घूम जाना या ऊपर चढ़ जाना बुरा लक्षण है। ऐंठन में बहुधा एक नेत्र की पुतली एक ओर को घूमती है और दूसरी दूसरी ओर को। यदि पुतली सिकुड़ कर बहुत छोटी हो जाय तो मस्तिष्क में विकार है। फैली हुई पुतली जो प्रकाश डालने पर भी नहीं सिकुड़ती नाड़ी सम्बन्धी भयानक रोग की सूचक है। इसी प्रकार एक ओर की फैली हुई पुतली और दूसरी ओर की सिकुड़ी हुई पुतली भी मस्तिष्क का विकार बताती हैं। कभी कभी अँतड़ियों में कृमि के होने से भी यही दशा हो जाती है।

जिह्वा

जिह्वा अँतड़ियों की दशा को बताती है। यदि जिह्वा मैली है तो अँतड़ियां भी मैली हैं अर्थात् वहां मल जमा हुआ है। यदि सफेद रंग के मैल के धब्बे जिह्वा पर जमें हों तो वे पाचन के विकार के सूचक हैं अर्थात् मन्दाग्नि का रोग है। यदि सफेद मैल सारी जिह्वा पर एकसार जमा हो तो उससे ज्वर समझना चाहिये; पीले रंग की मैल से पुराना कब्ज़ मालूम होता है जिसके कारण सारे शरीर में विष फल रहा है। यदि जिह्वा लाल और सुखी हुई हो तो वह अमाशय और अँतड़ियों की सूजन बताती है। अरुण ज्वर (scarlet fever) में जिह्वा पर कहीं लाल और कहीं सफेद दाने हो जाते हैं। मुँह भी भीतर से लाल हो जाता है। बच्चे के रोने के समय उसकी जिह्वा सहज में देखी जा सकती है।

दस्त

यह पहले ही बताया जा चुका है कि स्वस्थ दशा में बच्चे के दस्त पीले नरम और एकसार होते हैं। उसमें सफेद फुटकें नहीं होतीं। दिन में कम से कम दो दस्त अवश्य होते हैं। यदि चार या पाँच भी दस्त हों किन्तु उन में फुटकें या बदबू न हो, साधारण स्वास्थ दशा के दस्त हों तो कोई चिन्ता की बात नहीं। दस्तों की संख्या पर इतना ध्यान देना आवश्यक नहीं है जितना कि उसके रंग बदबू इत्यादि पर। श्वेत रंग की फुटकों के होने से यह मालूम होता है कि बच्चा भोजन को नहीं पचा सकता

अथवा उसके भोजन में वसा या प्रोटीन का भाग अधिक है। यदि त्रुटि पूरी न की जायगी तो कोई दूसरा रोग उत्पन्न हो जायगा।

ज्वर

यह पहले ही बताया जा चुका है कि बच्चे के शरीर की उष्णता बहुत ही शीघ्र घट बढ़ जाती है। छोटे छोटे कारणों से उसमें परिवर्तन हुआ करता है। इस कारण ज्वर से रोग का ठीक अनुमान नहीं हो सकता। जिनको बच्चों के रोगों का अनुभव है वे उसको देखकर ठीक पता लगा सकते हैं कि रोग की क्या अवस्था है। तो भी ज्वर देखना आवश्यक ही है। इसके लिये थर्मामीटर का प्रयोग करना चाहिये। गुदा में अथवा जाँघ में थर्मामीटर को कम से कम पाँच मिनट तक रखना चाहिये। गुदा में केवल दो मिनट काफ़ी है।

जब बच्चे को ज्वर हो तो उसको पीने को काफ़ी पानी देना चाहिये। भोजन की मात्रा घटाना आवश्यक है। यदि ज्वर १०४° या १०५° तक बढ़ जाय तो चिकित्सक को तुरंत बुलाना चाहिये।

ऐसे समय पर जल के द्वारा ज्वर को तुरंत ही कम किया जा सकता है। ८५ से ९० फ़ैरनहीट की उष्णता वाले जल से शरीर को स्पंज करना चाहिये। उस समय बच्चे को नंगा करके रबर वस्त्र (Rubber-Sheet) के टुकड़े पर लिटा

दो। यदि रबड़-वस्त्र (Rubber-Sheet) न मिल सके तो साधारण चिकना वस्त्र (oil-cloth) काफ़ी है। कमरा चारों ओर से बन्द कर लेना चाहिये। जल में वस्त्र भिगो कर बच्चे के शरीर पर फेरना चाहिये। उसके पश्चात् शरीर को सूखे तौलिया से पोंछ देना चाहिये।

इस प्रकार आठ वा दस मिनट तक शरीर को स्पंज करना चाहिये। यदि आवश्यकता हो तो इससे अधिक समय तक कर सकते हैं, जब तक कि ज्वर कम न हो। स्पंज करने के पश्चात थर्मामेटर से ज्वर को देख लेना चाहिये जिस से मालूम हो जाय कि ज्वर कितना कम हुआ है। साथ में ज्वर के अधिक होने पर चार औंस ठंढा जल पिचकारी के द्वारा गुदा के भीतर छोड़ देना चाहिये। इससे ज्वर के विष कम हो जांयगे और ज्वर से शरीर के जल की जो कमी होती है वह भी कुछ पूरी हो जायगी।

जो ज्वर बहुत ही जल्दी बढ़ता है वह वसे ही घटता भी है। यदि ज्वर धीरे धीरे चार या पांच दिनों में बढ़ा है तो वह भयानक है। चिकित्सक की आज्ञा के अनुसार कार्य्य करना आवश्यक है।

ज्वर के हट जाने के पश्चात कुछ दिनों तक बच्चों को शांत अवस्था में रखना आवश्यक है, नहीं तो ज्वर का फिर आक्रमण हो जायगा।

बाल्यकाल में पाचन के रोग सब से अधिक होते हैं। कै करना बहुत ही साधारण लक्षण है जो बच्चों में नित्य प्रति देखा जाता है। बहुधा माताएं या अन्य सम्बन्धी उसकी ओर ध्यान भी नहीं देते। यदि कै में खट्टी गंध हो तो समझना चाहिये कि बच्चे के आमाशय में अम्ल अधिक है जिससे मालूम होता है कि बच्चे ने अधिक भोजन किया है अथवा शक्कर इत्यादि वस्तु उसको अधिक दी गई है।

मंदाग्नि

हरे रंग के दस्त जिनमें बहुत दुर्गन्ध आती है, ऐसी दशा में आते हैं जब बच्चे को भोजन हजम नहीं होता और अँतड़ियों में सड़ता है।

यह पूर्ण पाचन न होने का चिन्ह है। हरे दस्त आने से पूर्व बहुधा दस्तों में जमे हुए दूध की फुटकें निकलती हैं। मटमैले रंग के दस्त वसा (Fat चर्बी) की अधिकता प्रगट करते हैं। पित्त-नलिका में (Bile-duct) जिसके द्वारा पित्ताशय से पित्त अंतड़ियों में आता है, सूजन आ जाने से भी दस्तों का ऐसा ही रंग हो जाता है, क्योंकि नलिका के बंद हो जाने से पित्त अंतड़ियों में नहीं पहुँच सकता। ऐसी दशाओं में बच्चे का स्वास्थ्य बराबर बिगड़ता जाता है। शरीर दुर्बल हो जाता है। मुख पर झुर्रियां पड़ जाती हैं; दुर्बलता के चिन्ह झलकने लगते हैं। बच्चा बेचैन रहता है और चिड़चिड़ा हो जाता है।

चिन्ह

इन सब लक्षणों का कारण भोजन ही है। बच्चे को उचित भोजन देने से अधिक भोजन या जितनी वार भोजन मिलना चाहिये उससे अधिक वार भोजन देने से ये लक्षण उत्पन्न होते हैं। जिन बोतलों में दूध रखा गया है उनको साफ न करने से भी यही दशा होती है। बच्चे के प्रत्येक वार रोने पर भोजना देना भी इसका एक बहुत बड़ा कारण है। बच्चे को नियमित समय पर भोजन की पर्याप्त मात्रा देनी चाहिए। उससे अधिक देना या समय से पूर्व देना दोनों से हानि होती है।

कारण

रोग को दूर करने के लिये आवश्यक है कि पहले कारण का पता लगाया जाय। यदि दूध में दोष है तो उसको दूर करना चाहिये। दूध के लिये जो नियम बताये गये हैं उनका पालन करना चाहिए। यह भी देखना आवश्यक है कि गौ के बछड़ा कब हुआ था। अधिक आयु के बछड़े वाली गौ का दूध न लेना चाहिये। दूध में बच्चे की अवस्था के अनुसार पानी और अन्य वस्तुओं को मिलाना चाहिए। जहाँ तक हो सके, दूध ताजा ले। उसके रखने की बोतलों को स्वच्छ रखे जिससे दूध बिगड़ने न पाय।

इन सब उपायों को करने से बच्चे की दशा अवश्य ही सुधर जायगी। यदि इससे ठीक न हो तो चिकित्सक की सम्मति की आवश्यकता है।

कब्ज बच्चों के बहुत रोगों का कारण होता है। बच्चे उससे बहुत कष्ट पाते हैं। जब बच्चों को कब्ज होता है तो उनके दस्तों की संख्या कम हो जाती है और वे अधिक कड़े नहीं होते।

कब्ज

जब कब्ज होता है तो भोजन का बहुत सा भाग अंतड़ियों में जमा हो जाता है और वहां वह सड़ता है। सड़ने से गैस उत्पन्न होती है जिससे कभी कभी पेट फूल जाता है। दस्त में बदबू आने लगती है और उसका रंग काला या हरा हो जाता है।

कब्ज के लिये व्यायाम बहुत उत्तम उपाय है। बच्चा हाथ पाँवों को फेंक कर ही व्यायाम करता है।। छोटे बच्चों को हाथों से पकड़ कर दस या पंद्रह मिनट तक सीधा खड़ा रखना चाहिये, किन्तु उनका सारा भार उनके पाँवों पर डालना उचित नहीं है। दिन में इस प्रकार तीन या चार बार करना चाहिये। इससे बच्चों का व्यायाम हो जाता है। जो बच्चे एक ही दशा में बिस्तरों में पड़े रहते हैं उनके शरीर की वृद्धि कम होती है। शुद्ध वायु में सोने से भी अँतड़ियों की क्रिया में सहायता मिलती है।

जब कब्ज हो तो उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। एक बड़ा चम्मच भर कर मीठा तेल अथवा आधी चम्मच ग्लिसरिन सिरिंज द्वारा गुदा में पहुँचा देनी चाहिये। इनके साथ में दो छटाँक गरम पानी और साबुन मिला देना उत्तम है।

बच्चों के प्रयोग के लिये विशेष बनी हुई सिरिंजं आती है जिनका अगला भाग तनिक मोटा होता है। यह रबड़ की बनी हुई होती है। इसमें एक या दो औंस ($\frac{१}{२}$ वा १ छटाँक) पानी आ सकता है। इसी सिरिंज से तेल और साबुन का पानी गुदा में पहुँ- चाया जा सकता है। सब से आवश्यक यह है कि बच्चे को ऐसी आदत करा दी जाय कि उसे नियत समय पर बिना किसी प्रयोग के दस्त हो जाय। जिन बच्चों का स्वभाव ही से कब्ज़ रहता हो उनकी औषधि केवल भोजन, पेट की मालिश या सपोज़िटरी (Suppositioes) है। कब्ज के लिये भोजन में जो परिवर्त्तन करना चाहिये उसका वर्णन किया जा चुका है। दूध में वसा का भाग बढ़ा देना चाहिये। बने हुए भोजन जैसे मैलिंस फुड (Mellin, food) को दूध में मिला देने से भी लाभ होता है। नारंगी के रस का प्रयोग पहले ही बताया गया है। कब्ज के लिये यह बहुत लाभकारी है। छोटे बच्चों के लिये यह बहुत उत्तम वस्तु है। प्रातः- काल जल के साथ मिलाकर भोजन से आध घंटा पूर्व इसे देना चाहिये।

जो बच्चे बड़े हों उनके भोजन में आलू, चपाती, इत्यादि का भाग कम कर देना चाहिये। शाक फल, ऐसे आटे की रोटी जिसको छाना न गया हो, देनी चाहिये। फल छिलके के साथ खाने से अधिक लाभ करते हैं।

उदर की मालिश से भी लाभ होता है। यह इस प्रकार

जाती है। इसे दाहिनी ओर जंघा के ऊपर से आरम्भ करना चाहिये। हाथ को दाहिनी जंघा के ऊपर उदर पर रख कर धीरे धीरे ऊपर की ओर पसलियों तक ले जाय। वहां से उदर के ऊपर होते हुए बांई ओर की पसुलियों तक पहुँचे। वहां से नीचे की ओर बांई जंघा के ऊपर तक पहुँच जाय। इस प्रकार सारी वृहद् अँतड़ियों की मालिश हो जायगी। प्रत्येक बार आठ दस मिनट तक मालिश करे और दिन में तीन या चार बार करे। ऐसा करने से उदर पुष्ट होगा और कब्ज दूर होगा।

सपोज़िटरी (Suppository) औषधि की बनी होती है। इनका एक सिरा पतला होता है और एक मोटा। पतले सिरे की ओर से यह अन्दर की ओर कर दी जाती है। ग्लिसरिन की सपोज़िटरी उत्तम है किन्तु प्रतिदिन प्रयोग करने से गुदा की श्लैष्मिक कला में उत्तेजना उत्पन्न कर देती है।

बच्चे को प्रतिदिन एक छटांक माल्ट शकर (Malt-sugar) मिलनी चाहिये। यह एक हलके जुलाब की भाँति काम करती है। यदि आवश्यक हो तो इसकी मात्रा १½ छटाँक तक कर देनी चाहिये। कब्ज तथा दूसरे रोगों के लिये जो एनीमा (Enema) दे, उसमें २ छटाँक जल में एक छटाँक माल्ट होनी चाहिये। जब इससे कब्ज दूर न हो, और एनीमा भी काम न करे तो अंडी के तेल का एक चम्मच देना चाहिये।

बच्चे को प्रतिदिन जुलाब या एनीमा देना ठीक नहीं है। इससे उसको आदत हो जायगी और फिर बिना एनीमा के

उसे दस्त नहीं होगा। एक रोग को दूर करने के लिये दूसरा रोग पीछे नहीं लगाना चाहिये।

दस्तों का आना

भोजन में कुछ भी भूल होने से बच्चों को दस्त आने लगते हैं। खट्टे या कच्चे फलों के खाने से भी दस्त आते हैं। कभी कभी केवल गर्मी से दस्त आ जाते हैं।

गरमी के मौसिम में बच्चे इस रोग से अधिक बीमार होते हैं। जिन बच्चों को बोतल का दूध दिया जाता है उनको यह रोग बहुत होता है। इन बच्चों में जिनको माता का दूध न मिलकर ऊपरी दूध मिलता है, जीवाणु बहुत सहज में पहुँच सकते हैं। येही जीवाणु रोग के कारण होते हैं।

दस्तों की संख्या बढ़ जाती है। संक्रामण (infection) के अनुसार दस्तों की संख्या बहुत या कम हो सकती है। कभी कभी एक दिन में बीस बीस दस्त आने लगते हैं। दस्तों का रंग इत्यादि भी संक्रामण पर निर्भर करता है। कभी दस्तों में फटे हुए दूध का भाग अधिक होता है; कभी दस्त बिल्कुल पतले होते हैं। उनमें दुर्गन्ध भी होती है। रंग-हरा, भूरा, काला, अथवा कभी कभी बिल्कुल सफेद होता है। कभी वे बिल्कुल पतले होते हैं कभी गाढ़े होते हैं।

रोगी को ज्वर होना आवश्यक नहीं है। प्यास बहुत लगती है विशेष कर जब पतले दस्त आते हैं। मुँह पर झुर्रियां पड़ जाती हैं। आँखों के चारों ओर काला घेरा बन

जाता है। इस अवस्था में रोगी को जितना वह पानी चाहे पीने को देना चाहिये। शरीर से जो जल निकल जाता है उसी के कारण प्यास अधिक लगती है। इसलिये पानी देने में कमी न करनी चाहिये। एक या दो दिन के लिये भोजन रोक देना चाहिये।

यदि चाहें तो बच्चे को (whey) दूध के फटने से जो पानी अलग हो जाता है उसे दे सकते हैं। जब दस्त बंद हो जाय तब चावल, जौ या जई को औंटा कर उसका पानी देना चाहिये १० छटाँक पानी में $\frac{१}{२}$ छटाँक शक्कर मिला सकते हैं।

एनिमा से बहुत लाभ होता है। रोग के विष एनीमा द्वारा बाहिर निकल जाते हैं और अँतड़ियों के नीचे का भाग स्वच्छ हो जाता है। गरम पानी का जिसकी उष्णता ९८ फैरनहीट के लगभग हो, तीन या चार औंस प्रति घंटा सिरिंज के द्वारा भीतर पहुँचाया जा सकता है। यदि साथ में ज्वर भी हो और तीव्र हो तो एक तौलिये को ठंढे पानी में भिगो कर और सारा प्रबंध स्पंज की भांति करने के पश्चात शरीर के चारों ओर लपेट दे। इस प्रकार से १५ वा २० मिनट तक रहने दे। उष्णता कम हो जायगी। साथ में एनीमा जो दिया जाय उसके जल की उष्णता भी ८० व ९० फै० के लगभग होनी चाहिये। बच्चों के लिये यह प्रयोग बड़े लाभदायक होते हैं। यदि हृदय की दशा ठीक न हो, शरीर का चर्म ठंढा हो और स्वेद आ रहा हो तो रोगी को कम्बल उढ़ा देना चाहिये और गरम पानी की

बोतलें उसके शरीर के चारों ओर रख देनी चाहियें। गरम पानी का एनीमा भी लाभदायक होता है। साथ में हृदय को उत्तेजित करनेवाली औषधियाँ भी देनी चाहियें।

रोगी को उस समय तक दूध न पिलाना चाहिये जब तक उस के दस्त बंद न हो गये हों। चावल इत्यादि का पानी जैसा ऊपर कहा गया है देना चाहिये। दस्तों को बंद करने की दवा न देकर ऐसी औषधि देनी चाहिये जो अँतड़ियों के भीतर से जमा हुआ मल इत्यादि निकाल दे। यह रोग प्रकृति की ओर से यह उद्योग है कि शरीर में जो हानिकारक वस्तु है वह बाहिर निकल जाय।

दस्तों में आँव का आना

जब दस्तों में आँव आती है तब उससे यह समझना चाहिये कि अँतड़ियों में जीवाणु (Bacteria) उपस्थित है। कब्ज ही इन जीवाणुओं के विकार का कारण है। मल में असंख्य जीवाणु होते हैं। कुछ इनमें ऐसे होते हैं जिनसे शरीर को लाभ होता है अर्थात् जो पाचन में सहायता देते हैं। कुछ जीवाणु रोग उत्पन्न करने वाले होते हैं। साधारणतः अंतड़ियों की उत्तम दशा में वे नियत समय पर मल द्वारा बाहिर निकल जाते हैं किन्तु कब्ज की दशा में जब अधिक समय तक यह अँतड़ियों के भीतर ही रहते हैं तब इनसे अँतड़ियों को हानि पहुँचती है। वहां घाव पड़ जाते हैं और उनसे आँव आने लगती है। जब दस्तों में आँव आती हो तब भोजन में परिवर्तन करना बहुत आवश्यक

है। भोजन बहुत हलका होना चाहिये। जौके पानी में दुग्धोज शक्कर मिलाकर देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त जैसी चिकित्सक की आज्ञा हो वैसा करना उचित है। दस्तों को बंद कर देना भी बड़ी भूल है। साधारण विरेचन के दस्त व आँव के दस्तों से समझना चाहिये कि अँतड़ियों में कुछ ऐसी वस्तु है जिसका वहां रहना शरीर के लिए हानिकारक है। दस्तों द्वारा प्रकृति उन हानिकारक पदार्थों को निकालने का उद्योग कर रही है। चिकित्सा द्वारा प्रकृति को सहायता देनी चाहिये। अतएव ऐसी औषधि देनी चाहिए जिससे अँतड़ियों की क्रिया बढ़े और अधिक दस्त आवें जिससे शीघ्र ही पाचन प्रणाली स्वच्छ हो जाय। जब जीवाणु वहां से निकल जांयगे तो स्वयं ही दस्त बंद हो जांयगे।

दुग्धोज शक्कर मिला हुआ एनीमा दिन में दो बार देना चाहिये। उदर पर एक गरम पेटी बँधी रहनी चाहिये। दिन में दो वा तीन बार उदर को सेंकने से लाभ होता है।

कै करना व पेट में दरद होना

बच्चों के कै करने के बारे में पहले ही कहा जा चुका है। भोजन का विकार ही इसका कारण है अर्थात् बच्चे ने शीघ्रता से भोजन किया है, अधिक भोजन किया है अथवा भोजन में दोष है। इन दोषों को दूर करना चाहिये।

पेट में शूल होने का मुख्य कारण प्रोटीन का अधिक

होता है। जब प्रोटीन अधिक होता है बच्चा उसको नहीं पचा सकता।

जमा हुआ दूध अँतड़ियों में एकत्र होकर सड़ने लगता है जिससे गैस बनती है और उदर फूल जाता है। दरद के समय कब्ज़ भी रहता है। जब भोजन का वह भाग जो नहीं पचा है एकत्र होता है तब वह सड़ता है और दरद उत्पन्न कर देता है।

बच्चे को कब्ज कभी नहीं रहने देना चाहिये। जिस प्रकार भी हो औषधि, मालिश इत्यादि के द्वारा बच्चे को अवश्य ही दस्त करवा देना चाहिये। दरद के समय भी यही चिकित्सा होनी चाहिये। एनीमा तुरंत ही देना चाहिये। पानी गरम देना चाहिये। थोड़ा तारपीन का तेल मिलाना बुरा नहीं है (१० छटाँक जल में १$\frac{१}{२}$ छटाँक तेल)। उदर को सेंकना चाहिये। साधारण सेंक की अपेक्षा गरम जल में तारपीन का तेल मिला कर उसमें कपड़े का टुकड़ा भिगोकर और उसको निचोड़ कर उदर पर कई बार रखना चाहिये। कपड़े को उदर पर रख कर उस पर एक तौलिया रख देना ठीक होगा जिससे कपड़ा बहुत जल्दी ठंढा न होने पावे। साधारण Paraffin oil के एक वा दो चम्मच को रात्रि में सोते समय देने से प्रातःकाल अवश्य ही साफ दस्त हो जायगा। ऐसी अवस्था में सपोज़िटरी बहुत गुण करती है।

कुछ बच्चों को मुँह से साँस लेने की आदत पड़ जाती है। इसका कारण बहुधा श्वास प्रणाली के भीतर किसी भांति की रुकावट होती है। गले के भीतर की ग्रन्थियां (Adenoids) जब बढ़ जाती हैं तब नाक के द्वारा श्वास भीतर जाने में रुकता है, इसी से बच्चा मुंह के द्वारा श्वास लेता है, जुकाम में भी कभी कभी ऐसा होता है। नाक रुक जाती है।

मुंह से साँस लेना

ऐसे दशा में केवल जुक़ाम की चिकित्सा करना काफी है। नथनों के भीतर तेल लगाना चाहिये। भोजन की मात्रा कम करनी और जल की अधिक करनी चाहिये। नाक को यदि डूश (Nasal douche) से स्वच्छ कर दिया जाय तो रोग बहुत जल्दी दूर हो जायगा और नाक खुल जायगी।

यदि बच्चा मुंह खोलकर श्वास ले तो। उसकी भली भाँति परीक्षा करवानी चाहिये। यदि ग्रन्थियां (Adenoids) बढ़ी हों तो उनको आपरेसन करवा कर निकलवा देना चाहिये। ऐसा न करने से पर्याप्त शुद्ध वायु भीतर न पहुँचेगी और उस से नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होने की संभावना होगी।

राजयक्ष्मा फुप्फुस का रोग है। उसका कारण एक जीवाणु होता है जो बहुत छोटा होता है और साधारण साधनों द्वारा शीघ्र नाश भी नहीं होता, अणुवीक्षण यंत्र (Microscope) में देखने से

राजयक्ष्मा

यह एक छोटे डंके की भांति देखाई देता है, वीच में से कुछ मुड़ा रहता है।

युवावस्थावालों की भाँति यह रोग बच्चों को भी होता है; बच्चों की अँतड़ियों की राजयक्ष्मा अधिक होती है किन्तु युवावस्थां में फुप्फुस पर ही अधिक आक्रमण होता है। फुप्फुस में जीवाणु श्वास द्वारा प्रवेश करता है। वहाँ पहुँच कर उस स्थान पर जहां इसकी स्थिति होती है, अनेकों परिवर्त्तन होते हैं। धीरे धोरे यह वहां के अंग को नाश कर देता है जिससे वहां गड्ढे वन जाते हैं। यदि जीवाणु का कार्यक्रम जारी रहा तो कुछ समय के पश्चात सारे अंग का इसी प्रकार नाश हो जाता है और रोगी की मृत्यु होती है। जीवाणु वायु में रोगी के श्वास द्वारा पहुंचते हैं। जिस मनुष्य का फुप्फुस इस जीवाणु का कार्यक्षेत्र वन रहा है वह जव खाँसता है तव सहस्त्रों जीवाणु उसके मुख से निकल कर वायु में मिल जाते हैं। खाँसने में थूक की अत्यंत सूक्ष्म वून्दे वायु में मिल जाती हैं। नन्ही नन्ही वून्दों में ये जीवाणु उपस्थित होते हैं। जव तक थूक नहीं सूखता उस समय तक जीवाणु उस से अलग नहीं हो सकते। किन्तु मिट्टी इत्यादि में मिलते ही थूक सूख जाता है। उसके जीवाणु भी मिट्टी में मिल जाते हैं और वायु द्वारा सारे मंडल को दूषित करते हैं।

वच्चों को अँतड़ियों का रोग अधिक होता है। उदर कड़ा पड़ जाता है। हाथ से दावने से कड़े मले हुए आटे के

समान प्रतीत होता है। जहाँ तहाँ छोटी छोटी गाँठे मालूम होने लगती हैं। दस्त कभी पतले, कभी बँधे हुए आते हैं। कभी कब्ज रहता है। इसका कारण मुख्य कर दूध ही होता है। जिन गौवों को यह रोग होता है उनके दूध के प्रयोग से दूध पीने वालों को यह रोग हो जाता है। इसलिये बहुत आवश्यक है कि जिस गौ का दूध बच्चे को पिलाने के लिये लिया जाय उसकी पूरी परीक्षा करवा ली जाय कि कहीं उसे कोई रोग तो नहीं है।

यद्यपि यह रोग शरीर के सब ही अंगों में हो सकता है तो भी फुफ्फुस और अँतड़ियाँ दो मुख्य अंग हैं जहां सब से अधिक इस जीवाणु का कार्यक्षेत्र बनता है। बच्चों को अँतड़ियों ही का रोग अधिक होता है।

राजयक्ष्मा एक ैतृक रोग है। इस रोग से पीड़ित माता पिता के बच्चों को भी यह रोग होता है। यह देखा जाता है कि कुटुम्ब में जहां एक को यह रोग हुआ फिर औरों को भी होता है। रोगी माता पिता के बच्चों को यदि यत्नपूर्वक उचित विधि से न पाला गया जैसा कि इन बच्चों को पालना चाहिए, तो बड़े होकर अवश्य ही वे रोगी हो जाते हैं और उनका शरीरान्त भी इसी रोग में होता है। इस कारण आवश्यक है कि छोटे ही बच्चों में इस रोग के प्रारंभिक चिन्ह पहिचान लिये जाँय। सर विलियम जैनर ऐसे बच्चों का इस भांति वर्णन करते हैं। "देह की खाल

पतली, स्वच्छ वर्ण, शरीर के ऊपर की नीली नसें (शिरायें) उभरी हुईं, आँखे चमकती हुईं, आँखो की बड़ी बड़ी पुतली, भौंहे लम्बी, सिर के पाल पतले और चमकदार, हड्डियों के सिरे छोटे, टांग और बाहों की हड्डी लम्बी"।

इन बच्चों के रोग को शीघ्र ही पहिचानना बहुत आवश्यक है क्योंकि उसी पर उनकी उचित चिकित्सा निर्भर करती है। जो बच्चा दुबला या कृश शरीर का दीखे अथवा ऊपर लिखे चिन्ह जिसमें उपस्थित हों, उसकी भली भांति परीक्षा करवानी चाहिये। यह जानना बहुत आवश्यक है कि परिवार में तो किसी को यह रोग नहीं हुआ। यदि माता पिता को यह रोग हुआ है अथवा परिवार के किसी मनुष्य को यह रोग है तो सन्देह दृढ़ हो जाता है; बच्चे के रोगग्रस्त होने की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त उस स्थान को देखना चाहिये जहां बच्चा रहता है। गन्दे, छोटे स्थानों में रहना जहां स्वतंत्र वायु का प्रवेश न हो इस रोग के फैलने का एक मुख्य कारण होता है। जहां सूर्य्य की किरणें और शुद्ध वायु का पूर्ण संचार होता है वहां इस रोग की वृद्धि नहीं होने पाती। शरीर की दुर्बल अवस्था में यह रोग अधिकतर आक्रमण करता है। जब शरीर की रक्षक शक्तियां घट जाती हैं तब वे इन जीवाणुवों का नाश नहीं कर सकतीं और इस प्रकार ये जीवाणु विजयी होकर शरीर के किसी एक भाग में घुस बैठते हैं। वहीं से सारे

शरीर में विष फैलाते हैं और उसका नाश करना आरम्भ करते हैं जिसमें उन्होंने पहले प्रवेश किया था। ऐसे स्थानों में रहना जहां शुद्ध वायु का पूर्ण प्रवेश न हो अथवा सूर्य्य की किरणें किसी समय न आती हों शरीर की शक्तियों को घटाता हैं। स्वास्थ्य उसी समय तक ठीक रहता है जब तक शरीर को शुद्ध वायु और प्रकाश मिलता रहे।

कभी कभी हलके ज्वर का हो जाना, खाँसी का आना, रात्रि को सोते समय पसीने का आना, शरीर भार का कम होना, इत्यादि इस रोग के चिन्ह हैं। जिन बच्चों की छाती भीतर को बैठी हो अथवा काठ के पीपे के आकार की हो अर्थात् गोल और बीच में उठी हुई हो अथवा कबूतर की भाँति आगे की ओर निकली हो, उन बच्चों में रोग का सन्देह हो सकता है। ऐसे बच्चों के शरीर की उष्णता को दिन में दो बार सायं और प्रातः बहुत ध्यान से देखना चाहिये। उष्णता से भी बहुत आवश्यक शरीर भार को देखना है। यदि बच्चे का शरीर भार बराबर घटता जा रहा है और साथ में ज्वर, खाँसी के भी लक्षण हैं तो बच्चा अवश्य ही रोगी है। यदि बच्चे के शरीर की उष्णता तो अधिक रहती है किन्तु भार में कमी नहीं है तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। तब रोग राजयक्ष्मा नहीं है। कुछ समय के पश्चात् यह उष्णता स्वयं ही ठीक हो जायगी। इस रोग की चिकित्सा केवल तीन

बातों पर निर्भर है। शुद्ध वायु, उत्तम उचित भोजन, और व्यायाम। येही तीन वस्तुयें इस रोग की औषधि हैं।

शुद्ध वायु बच्चे को साधारण अवस्था में भी कितनी आवश्यक है यह पहले ही कहा जा चुका है। इस रोग में तो शुद्ध वायु का न मिलना रोगी के लिये मृत्यु ही है। यदि कोई औषधि रोगी को बचा सकती है तो वह शुद्ध वायु और उचित भोजन है।

जिन बच्चों को रोग हो जाने का भय हो उन्हें सदा खुली हुई शुद्ध वायु में रखने का प्रयत्न करना चाहिये। जितना समय होसके खुले हुए स्थानों में व्यतीत करना चाहिये। रात्रि को सोने के लिये ऐसा स्थान बनवा लेना चाहिये जो चारों ओर से खुला हो। पत्थर या लकड़ी के खम्भों पर आश्रित टीन या फूँस का छप्पर बहुत उत्तम रहेगा।

यदि यह न हो सके तो एक वृक्ष के नीचे मसहरी लगा कर बच्चे को सुलावे। वस्त्र इतने काफ़ी होने चाहियें कि सर्दी न लगे। मुँह ढँक कर कदापि न सोना चाहिये। ऐसा करने से शुद्ध वायु से कुछ भी लाभ न होगा।

इस रोग के रोगियों के लिये पहाड़ की वायु बहुत हित-कर होती है। वह हलकी होती है और वायु भार कम होने से फुफ्फुस पर अधिक बोझ नहीं पड़ता। इसी कारण सेनिटेरियम सदा पहाड़ों पर बनाये जाते हैं। सैनि-टेरियम से मुख्य लाभ यही है कि वहां शुद्ध वायु मिलती

है जो सब भाँति दूषणरहित होती है; दूसरे रोगियों से दूर रहना होता है। अवस्था के अनुसार उचित भोजन मिलता है और व्यायाम भी शरीर की दशा के अनुसार करवाया जाता है। यदि मकान ही पर इन सब बातों का उचित प्रबंध हो सके तो सैनिटेरियम में रोगी के भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु यदि घर में और भी रोगी हों, मकान उत्तम न हो तथा अन्य प्रकार की असुविधाएं हों तो रोगी को अवश्य ही सैनिटेरियम में भेज देना चाहिये। जो रोगी आरम्भिक अवस्था में इन स्थानों में पहुँच जाते हैं वे आरोग्य हो जाते हैं। रोग की अवस्था बढ़ने पर उनके आरोग्यता लाभ करने का बहुत कम अवसर रह जाता है।

जितना अधिक और उत्तम भोजन दिया जा सके अर्थात् जिसको रोगी पचा सके उतना देना चाहिये। आमाशय की पाचन शक्ति पर रोगी का आरोग्यता लाभ करना निर्भर करता है। जितना अधिक भोजन वह पचा सकेगा उतना ही उसके आरोग्य होने की अधिक सम्भावना है। दूध, घी, मक्खन, अंडा, सुखे हुए फल, बादाम, अखरोट, ताज़े फल, इत्यादि पदार्थ बहुतायत से देने चाहियें किन्तु साथ में रोगी की पाचन शक्ति की ओर भी ध्यान रखना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो उसके लिए कुछ औषधि दी जा सकती है।

व्यायाम इन रोगियों के लिये आवश्यक है। किन्तु उतना ही व्यायाम करवाना चाहिये जितने से शरीर की उष्णता न

बढ़े। बहुत व्यायाम करना भी जिससे शरीर में आलस्य आ जाय या जो शारीरिक शक्ति से अधिक हो, हानि पहुँचाता है।

जो बच्चे राजयक्ष्मा से पीड़ित माता पिता की सन्तान हों उनकी ओर आरम्भ ही से पूर्ण ध्यान देना आवश्यक है। चाहे उनमें रोग के कोई लक्षण न भी हों तो भी उनको उसी भाँति रखना चाहिये कि मानों वे रोगग्रस्त हैं। यदि उन में कोई शारीरिक विकार हो जैसे गले की ग्रन्थियां (adenoids) बढ़ी हों, दांतों में कीड़ा लगा हो, पांडु रोग हो, छाती आगे की ओर निकली हो, इत्यादि इत्यादि, तो उनको दूर करने की व्यवस्था करनी चाहिये। ऐसे बच्चों को विशेष कर ऐसे रोगों के पश्चात् जैसे इनफ्लुयेंजा (Influenza) निमोनि-या, चेचक, कुकुर खांसी, राजयक्ष्मा के चिन्ह प्रगट हो जाते हैं। ऐसे समय पर विशेष कर उनका ध्यान रखना चाहिये।

अंत में यह कभी न भूलना चाहिये कि प्रकाश और शुद्ध वायु इस रोग के शत्रु हैं।

टौंसिल और ऐडिनायड — ये दोनों ग्रन्थियां गले में होती हैं। ऐडिनायड जहां नालिका का भीतरी भाग समाप्त होता है वहां होती हैं टौंसिल की स्थिति गले में तनिक नीचे होती है। प्रकाश में मुंह को खोल कर जिह्वा को दबाने पर यह भली भांति दिखाई देते हैं। गले में दोनों ओर एक एक रहते हैं। कभी कभी फूल जाते हैं, इनमें सूजन

आ जाती है। उस समय इनसे कष्ट मिलता है। कभी कभी तो इतने फूल जाते हैं कि भोजन भी नहीं किया जा सकता।

जब ये फूलते हैं तक प्रायः कब्ज रहता है। साथ में सिर-दर्द, जुकाम, कुछ ज्वर, शरीर में दर्द इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। खाँसी आने लगती है। दूध या पानी पीने में भी दर्द होता है। जब एक बार टौंसिल फूले फिर वे बहुधा जन्म भर फूला करते हैं। इस रोग के समय समय पर आक्रमण होते हैं। इनका ओपरेशन द्वारा पूर्णतया निकाल देना ही सब से उत्तम है। एक उत्तम शल्य विद्वान के द्वारा ओपरेशन करवाने में कोई भी भय की बात नहीं है।

जब टौंसिल फूले हों तब बच्चे को बिस्तर पर लिटायें रखना चाहिये। एक चिकित्सक का आश्रय लेना आवश्यक है। गले के भीतर ग्लिसरिन और टेनिक ऐसिड(Gleycerine and Tannic acid) या कोई अन्य वस्तु जैसी चिकित्सक की आज्ञा हो लगानी चाहिये। ऊपर से गले को सेकने से बहुत आराम मिलता है। दो तीन दिन के पश्चात सूजन कम हो जाती है और दूसरे लक्षण भी कम हो जाते हैं। कब्ज इस रोग के होने में बहुत सहायता देता है।

एडीनोइड से जो हानि होती है वह पहले ही कही जा चुकी है। श्वास लेने में रुकावट होती है जिससे काफी ओक्सिजन भीतर नहीं पहुँच सकती। वक्ष का आकार बिगड़ जाता

है। जिन बच्चों को यह रोग होता है उनकी शारीरिक वृद्धि बहुधा बन्द हो जाती है। देखने में मूर्ख सरीखे दीखते हैं; मुँह खोल कर साँस लेने की आदत पड़ जाती है। जो बच्चे मुंह खोल कर सोते हैं व सोने में खर्राटे लेते हैं उनके नाक और गले की परीक्षा करवानी चाहिये। यदि एडीनोइड्ड बढ़े हों तो उनको निकलवाने में देर न करनी चाहिये। बहुधा देखा गया है कि आपरेशन के पश्चात् शारीरिक वृद्धि के साथ मस्तिष्क की भी उन्नति होती है। बच्चा मूर्ख न रह कर उसकी विचार-शक्तियों का पूर्ण विकास हो जाता है। जो बच्चा पहले रोगी, कृश शरीर, मन्द और मूर्ख दीखता था वही अब तीव्र, समझदार और पुष्ट हो जाता है।

डिप्थीरिया

डिप्थीरिया बच्चों का एक भयानक रोग है। अधिक अवस्था वालों को भी यह रोग हो जाता है किन्तु सब से अधिक दस वर्ष की अवस्था के नीचे होता है। जब तक इस रोग की चिकित्सा आधुनिक प्रकार से नहीं होती थी, मृत्यु संख्या २५ % से ५० % थी अर्थात जो रोगग्रस्त हो जाते थे उनमेंसे २५–५० % की मृत्यु होती थी किन्तु जब से सीरम की चिकित्सा निकली है तब से अस्पताल के रोगियों में मृत्यु केवल १० % रह गई है।

इस रोग का कारण एक जीवाणु होता है जो गले या दूसरे स्थानों से बनी हुई झिल्ली में रहता है। यह जीवाणु

वायु, भोज्य पदार्थ, इत्यादि के द्वारा एक रोगी से दूसरे पर आक्रमण करता है। पेंसिल इत्यादि जिनको बालक मुंह में रख लेते हैं या खेलने की दूसरी वस्तुओं के द्वारा कई बार रोग फैल चुका है। प्यार करने से भी रोग हो सकता है। यदि बच्चे को पहले इस भांति का कोई रोग हुआ है जैसे कुकुर खांसी, चेचक, या गले का कोई रोग, तो उसे यह रोग बहुत सहज ही में हो जायगा। कुछ परिवारों में यह रोग अन्य परिवारों की अपेक्षा अधिक होता है।

अधिकतर रोग गले से आरम्भ होता है। टौंसिलों पर स्वेत रंग की एक झिल्ली बनने लगती है। पहले छोटे छोटे धब्बे यतस्ततः एक दूसरे से अलग होते हैं। फिर बढ़कर सब फैल जाते हैं। झिल्ली फैल जाती है। कभी कभी यह झिल्ली तलुवे और काग (Palate and uvula) पर बनती है। सारा गला और मुख का भीतरी भाग सूज जाता है। गर्दन कड़ी पड़ जाती है और जबड़े के पास अधिक दर्द मालूम होने लगता है। झिल्ली पीछे की ओर बढ़कर स्वर यंत्र पर और आगे की ओर नाक में फैल सकती है। जब रोग अधिक बढ़ जाता है तब झिल्ली दोनों ओर से बढ़कर मिल जाती है। इससे वायु के भीतर जाने के लिये काफ़ी स्थान नहीं रहता। बच्चे को साँस लेने में बहुत कष्ट होने लगता है, ऐसा मालूम होता है मानों बच्चे का साँस घुट रहा हो।

जब रोग नाक में फैलता है तब वहां भी झिल्ली बन जाती

है, नाक लाल हो जाती है और बदबूदार पानी उससे निकलने लगता है। आँखों पर जब आक्रमण होता है तो आँखें सूज कर लाल हो जाती हैं, श्वेत रंग का गाढ़ी लेसदार मैल उनमें से निकलने लगती है। इसी प्रकार शरीर के दूसरे अंगों में भी रोग होता है।

इस रोग में ज्वर अधिक नहीं होता, कभी कभी १०३° व १०४ तक पहुँचता है। हृदय कमजोर हो जाता है। वृक पर भी प्रभाव पड़ता है। रोगी के अच्छा हो जाने के पश्चात् भी बहुधा तलुवे का स्तंभ (Paralysis) हो जाता है। कमजोरी बहुत होती है और रोगी पांडु वर्ण हो जाता है किन्तु विचार शक्ति अन्तिम समय तक ठीक रहती है।

इस रोग की केवल एक ही चिकित्सा है। इसी रोग से ग्रस्त घोड़े इत्यादि के रक्त से सीरम (Serum) तय्यार किया जाता है। इसके इनजेक्शन दिये जाते हैं।

इस सीरम के प्रयोग में बहुत सफलता हुई है। जिस रोगी की उचित समय पर सीरम द्वारा चिकित्सा हो जाती है वह अवश्य अच्छा हो जाता है, ज्योंही बच्चे में कुछ भी रोग के लक्षण पाये जायं, जैसे गले की ग्रन्थियों का सूजना, श्वेत धब्बे बनना, तो उसी समय रोगी को उत्तम चिकित्सक के पास ले जाना चाहिये और उसके आज्ञानुसार औषधि करनी चाहिये। समय को खोना सब से बड़ी भूल है। जीवन

और मृत्यु केवल समय पर निर्भर करते हैं। यदि चिकित्सा देर से आरम्भ हुई तो उससे कुछ भी लाभ न होगा।

जिस कमरे में रोगी रहे वहाँ दूसरे बच्चे को कदापि न आने देना चाहिये। कमरा गरम रखना चाहिये। यदि सदा कमरे की उष्णता एक समान रख सकें तो बहुत उत्तम है। एक अँगीठी पर एक बर्तन में पानी रखा रहना चाहिये जिससे भाप बनकर सारे कमरे में फैलती रहे। चाय की केतली इस प्रयोजन के लिये उत्तम है। चिकित्सक की आज्ञा से केतली के पानी में कुछ औषधि जैसे Tr. Benzoin Co मिला सकते हैं। इसकी भाप रोगी के लिये लाभदायक है।

जब बच्चे की अवस्था ऐसी हो कि उसे श्वास लेने में कष्ट होता हो, वायु ठीक प्रकार से भीतर न जाती हो अर्थात् झिल्ली इतनी बढ़ गई हो कि श्वास-मार्ग उससे रुक जाय तब स्वर-यंत्र-भेदन का आपरेशन आवश्यक है। गले में कौड़ी के नीचे स्वर यंत्र को छेद कर चांदी की एक नलिका जो विशेष कर इसीलिये बनाई जाती है, लगा देनी चाहिये जिससे वायु सहज में भीतर जा सके और फुफ्फुस का कार्य न रुके। यह सब कार्य चिकित्सक का है।

स्कर्वी

भोजन के सम्बन्ध में बतलाया जा चुका है कि विटेमीन भोजन का मुख्य भाग है। फल और ताजे दूध में विटेमीन रहती है। किन्तु इन वस्तुओं को पकाने से इसका नाश हो जाता है। जिन बच्चों को

विटेमीन से रहित भोजन मिलता है, जैसे बना हुआ दूध (Horlick's malted milk और Glaxo) और कोई फल या रस नहीं मिलता या किसी दूसरे भोजन के ताज़ा पदार्थ द्वारा उनको काफ़ी विटेमीन नहीं मिलता, तो ऐसी दशा में उनको स्कर्वी नामक रोग हो जाता है। भोजन का दोष ही इस रोग का कारण है।

बच्चे की टांगों पर काले और नीले धब्बे पड़ जाते हैं। इन धब्बों का कारण रक्त होता है जो चर्म के नीचे जमा होकर उसे विवर्ण कर देता है।

दबाने से टाँगों में दरद होता है। रोगी को चलने में कष्ट होता है। घुटने और टखनों पर सूजन आ जाती है। शरीर का रंग पीला हो जाता है। कमज़ोरी बहुत मालूम होने लगती है।

मसूड़ों पर सूजन आ जाती है। इनका रंग नीला हो जाता है। वे कमज़ोर और ढीले हो जाते हैं। इनको तनिक भी दबाने पर रक्त निकलने लगता है। जब रोग अधिक बढ़ता है तब मसूड़े दाँतों को छोड़ देते हैं और ढीले होकर लटकने लगते हैं। कुछ दिनों में दांत गिर जाते हैं। मुख से और श्वास में दुर्गन्ध आने लगती है। देह का चर्म शुष्क हो जाता है।

रोग की चिकित्सा भोजन ही के द्वारा होती है। ताज़ा फल और शाक का अधिक प्रयोग होना चाहिये। आलू इस

रोग के लिये बहुत लाभदायक है। नारंगी के रस से बहुत लाभ होता है। ढाई या तीन छटाँक रस नित्य प्रति पीने को देना चाहिये। इससे कम पर्याप्त न होगा। यदि यह फल न मिल सके तो सूखे मटर या चने का प्रयोग करना चाहिये। मटर या चने के वे दाने जिन पर से छिलका नहीं हटाया गया है चौबीस घंटे तक पानी में भिगोने चाहियें। इसके पश्चात पानी में से निकाल कर उन्हें एक दूसरे वर्त्तन में फैला कर रख देना चाहिये जिससे उनको काफी वायु मिले। इससे उन में दो दिन के बाद छिल्ले फूटने लगेंगे। छिल्ले फूटने के पश्चात उनको खाना चाहिये।

रिकेटस

इस रोग में बच्चे की हड्डियां नरम हो जाती हैं। काफ़ी लवण (Salts) न मिलने से हड्डियों में वह कड़ापन नहीं आता जो शरीर को स्थिर रखने के लिये आवश्यक है। अस्थियों में कड़ापन मुख्यतया केलशियम के लवणों ही से आता है जिनमें स्फुरि लवण मुख्य होते हैं। उचित भोजन न मिलना, ऐसे स्थानों में रहना जहां शुद्ध वायु और प्रकाश की पूरी पहुँच न हो, जो गन्दे हों, इन सब बातों से बच्चे दुर्बल होते हैं। तिस पर यदि भोजन में लवणों की कमी है अथवा विटेमीन नहीं है तो भी उससे रिकटेस हो जायगा। यदि माता बच्चे को बहुत दिनों तक दूध पिलाती रहे तो उससे भी यही दशा उत्पन्न हो जाती है।

यह दशा न केवल जन्म के पश्चात् ही उत्पन्न हो सकती है किन्तु उससे पूर्व भी। यदि गर्भ के दिनों में उचित भोजन नहीं मिलता है तो जो बच्चा उत्पन्न होगा उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा। इसलिये काफी मात्रा में दूध मिलना आवश्यक है। दूध में केलशियम के लवण होते हैं। उनके द्वारा बच्चे की अस्थियों का पोषण होता है। गर्भवती स्त्रियों के लिये जर्द या चना उत्तम है। बिना छिलका उतारे हुए नाज का प्रयोग करना उनके लिये लाभदायक होगा।

उनके भोजन के द्वारा ही बच्चे की सब आवश्यकताएं पूरी होती हैं। उनको लवण इत्यादि सब माता ही से मिलते हैं। ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता है त्यों त्यों उसकी आवश्यकताएं भी बढ़ती हैं। इस कारण अधिक आयु हो जाने पर माता का दूध बच्चे के लिये पर्याप्त नहीं हो सकता।

रोग के लक्षण ये होते हैं। पसीना बहुत आता है; सिर और माथा सदा गीला रहता है। सारे शरीर में तनिक भी दबाने से दरद होता है। मूत्र बहुत आता है। बच्चे का आकार बुड्ढों के सदृश हो जाता है मानो उसको परिवार या संसार की चिन्ताओं ने घेर रखा है। शरीर की सब अस्थियाँ नरम होकर विकृत होने लगती हैं। सिर ऊपर से चपटा होना आरम्भ हो जाता है। अस्थियां मुड़ जाती हैं। जोड़ों पर सूजन आ जाती है और उदर बढ़ जाता है। दाँत देर से निकलते हैं। यदि नौ महीने तक कोई दाँत न निकले तो बच्चे को किसी

उत्तम चिकित्सक को दिखलाना चाहिये कि कहीं उसको यह रोग तो नहीं है।

इस रोग की चिकित्सा भी स्कर्वी की भाँति भोजन पर निर्भर करती है। फल, शाक, फलों का रस लाभदायक होता है। इनसे यह रोग अच्छा होता है और रुकता भी है, गेहूं का अनाज विशेष कर हितकर है। इसमें आवश्यक विटेमीन और स्फुर के लवण रहते हैं। बच्चे या माता के भोजन में इसको सम्मिलित कर देना चाहिये। भोजन के दूसरे पदार्थ भी ऐसे होने चाहियें जिन में स्फुर काफी हो। औषधि के द्वारा दिये हुए लवणों से अधिक लाभ न होगा। जिन बच्चों को गौ के दूध पर पाला जाता है उनको यह रोग अधिक होता है। जिनको माता का दूध मिलता है, वे इतने अधिक रोगग्रस्त नहीं होते। दूध को उबालने से विटेमीन का नाश हो जाता है।

जब शारीरिक अवस्था में कुछ उन्नति होती है तब जोड़ों की सूजन कम हो जाती है। शरीर का दरद भी कम होने लगता है। अस्थियों का मुड़ाव और रीढ की हड्डी बहुधा वैसी ही रह जाती है। रोग में इन बच्चों की मांस-पेशियाँ बहुधा कमज़ोर हो जाती हैं जिनको वे इच्छानुसार प्रयोग नहीं कर सकते। इन बच्चों को बहुधा कब्ज रहता है और दस्तों में बड़ी दुर्गन्ध होती है। इसलिये इनको ऐसा भोजन देना चाहिये जिससे कब्ज न रहे। Malt Sugar पहले ही बताई जा चुकी है। यदि वह काफ़ी न हो तो liquid paraffin का एक या

दो चम्मच दिया जा सकता है। शरीर में तेल मल कर नित्य ठंढे जल से स्नान करवाना चाहिये। बच्चे को जहां तक हो सके घर के बाहर खुले स्थान में रखना चाहिये। इस प्रकार तथा अन्य उपायों से उसके स्वास्थ्य की उन्नति का उद्योग करना चाहिये।

---

(८) बाल अवस्था।

जन्म से पूर्व जब तक बालक गर्भ में रहता है उसका पोषण माता के रक्त के द्वारा होता है। माता का रक्त भ्रमण करता हुआ कमल में जाता है। वहां बच्चे के नाल की रक्त वाहिनी नलिकायें रहती हैं। इन नलिकाओं में माता का रक्त स्वयं नहीं जाता। कमल में एक ओर माता का रक्त भ्रमण किया करता है। इस रक्त और बच्चे की रक्त वाहिनी नलिकाओं के बीच में एक बहुत बारीक झिल्ली रहती है जिसके द्वारा माता के रक्त में घुले हुए पदार्थ सहज में छन कर बच्चे की नलिकाओं में आ सकते हैं। इस प्रकार माता का रक्त मानो छन जाता है। छन कर जो कुछ पहुँचता है उसी से बच्चे का पोषण होता है। शरीर की सब आवश्यकताएँ इसी से पूरी होती हैं। ओषजन भी इसी के द्वारा बच्चे को मिलती है।

जन्म के पश्चात् यद्यपि माता और बच्चे का इतना घनिष्ट सम्बन्ध नहीं रहता, बच्चा माता के शरीर का एक भाग नहीं रहता, उसकी स्थिति भिन्न हो जाती है किन्तु तौ भी बच्चा माता के ऊपर कितना निर्भर करता है यह इस से भली भाँति विदित है कि जिन बच्चों की माताएँ मर

आती हैं उनमें से बहुत कम जीवित रहते हैं। प्रथम नौ मास तक माता और बच्चे के यद्यपि दो शरीर होते हैं किन्तु हम कह सकते हैं कि प्राण एक ही होता है। इसलिये जन्म से नौ मास तक का समय बाल्यकाल की प्रथम अवस्था कहनी चाहिये।

नौ महीने के पश्चात् बच्चे का जीवन स्वतंत्र होता है। बहुधा बच्चे माता का दूध छोड़ने लग जाते हैं। गौ का दूध या और कोई भोज्य पदार्थ उनको मिलने लगता है। दांत निकलने आरम्भ हो जाते हैं। तीसरे वर्ष के समाप्त होते समय तक लगभग सब दाँत निकल आते हैं। बच्चा बोलना सीखता है। चलने का उसे कुछ अभ्यास होने लगता है। विचार शक्ति बढ़ती है। नौ महीने से तीसरे वर्ष के समाप्त होने तक दूसरी अवस्था समझनी चाहिये।

तीसरे वर्ष के पश्चात् विचार शक्ति का पूर्ण विकास होना आरम्भ होता है। इसी समय दूध के दाँत गिरते हैं और स्थायी दांत निकलते हैं। बारह वर्ष के लगभग युवावस्था आरम्भ होती है। इस अवस्था का पदार्पण लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में जल्दी होता है। तीसरे वर्ष से बारहवें वर्ष तक का समय तीसरी अवस्था कहना चाहिये।

इसके पश्चात युवावस्था प्रारम्भ होती है। हम को देखना है कि भिन्न भिन्न अवस्थाओं में बच्चे के शरीर में क्या क्या परिवर्तन होते हैं।

जन्म के समय बच्चे के शरीर का भार ३ $\frac{१}{२}$ सेर और लम्बाई १९ इंच होती है। प्रथम वर्ष के समाप्त होने तक भार बढ़ कर १० $\frac{१}{२}$ सेर और लम्बाई २७ इंच हो जाती है। प्रथम चार या पाँच दिनों में शरीर भार ४ या ५ छटाँक घट जाता है किन्तु उसके पश्चात २-३ छटाँक प्रति सप्ताह के हिसाब से बढ़ता है। इसी प्रकार शरीर की लम्बाई भी बढ़ती है। छः महीने में चार इंच से अधिक बढ़ जाती है।

प्रथम अवस्था

किन्तु शरीर के सब भागों में समान वृद्धि नहीं होती। जैसा नीचे के अङ्कों से विदित होगा बच्चे का सिर उसके शरीर की अपेक्षा बहुत बड़ा होता है, टाँगें छोटी हैं; धड़ दोनों के बीच में रहता है, अर्थात् न सिर के बराबर बड़ा और न टाँगों के बराबर छोटा होता है।

	युवा	बच्चा
सिर	२	१
धड़	३	१
बाहु	३	१
टाँग	५	१

इस प्रकार बच्चे का शिर लम्बाई में सारे शरीर का $\frac{१}{४}$ होता है। युवा मनुष्य में $\frac{१}{८}$ होता है। जहां युवा मनुष्य की टाँगें शरीर का $\frac{४}{८}$ होती हैं वहां बच्चे की टाँगें शरीर का $\frac{३}{८}$

होती हैं। इसी प्रकार शरीर के दूसरे अंगों में भी वृद्धि में भिन्नता होती है। बाल अवस्था में शरीर की अस्थियों में भी बहुत कुछ परिवर्तन होता है और इसके कारण बच्चे का हाथ पाँव चलाना, सिर उठाने का उद्योग करना, और मांस-पेशियों की शक्ति का बढ़ना आरंभ हो जाता है।

यद्यपि बच्चे की खोपड़ी बहुत बड़ी होती है किन्तु उसका मुख छोटा होता है। मस्तिष्क खोपड़ी की अपेक्षा बड़ा होता है। जबड़ा छोटा होता है क्योंकि इस समय तक मांस-पेशियों का उस पर दबाव नहीं पड़ता और न दाँत ही निकलने आरम्भ होते हैं। दूसरे अंगों की भांति खोपड़ी भी बढ़ती है। किन्तु उसमें कम वृद्धि होती है। जन्म के समय खोपड़ी का घेरा १३ इंच से अधिक नहीं होता। नौ महीने पर यह १७ इंच हो जाता है, ३ वर्ष में १९ इंच और तेरहवें वर्ष में २१ इंच होता है।

रीढ़ की हड्डी पहले तो बिलकुल सीधी होती है किन्तु ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता है उसी भाँति इसके आकार में भी परिवर्तन हो जाता है। तीसरे महीने पर बच्चा सिर उठाने लगता है, छठें महीने पर वह बैठने का उद्योग करता है, और नवें महीने पर खड़ा होने लगता है। इन्हीं कारणों से रीढ़ की हड्डी में भी मुड़ाव उत्पन्न हो जाता है। छाती का आकार भी आयु के अधिक होने पर बिल्कुल बदल जाता है। बाल्यावस्था में छाती गोल होती है, किन्तु जब बड़े होने

पर मांशपेशियां अपना कार्य करने लगती हैं तब छाती चौड़ी हो जाती है।

आन्तरिक अंगों में भी परिवर्तन होते हैं। जन्म के पहले फुफ्फुस का कार्य आरम्भ नहीं होता। जन्म के पश्चात जब बच्चा श्वास लेना आरम्भ करता है, तब उसमें रक्त जाता है। इससे हृदय में भी परिवर्तन होते हैं। जन्म के समय हृदय, यकृत, वृक्क और गले की ग्रन्थी (Thyroid) जो टेटुवे के नीचे होती है, शरीर की अपेक्षा बड़ी होती हैं। कुछ समय के पश्चात् इनकी वृद्धि बहुत धीमी पड़ जाती है। मांसपेशी, हड्डी, अंडकोष, और क्लोम में वृद्धि बहुत तीव्र होती है। आमाशय और प्लीहा में भी अधिक वृद्धि होती है। मस्तिष्क के आकार में प्रथम कुछ महीनों में तो अधिक वृद्धि होती है किन्तु उसके पश्चात कम हो जाती है।

इस अवस्था में हृदय को अधिक काम करना पड़ता है। नाड़ी की गति तीव्र होती है, हृदय की धड़कन भी अधिक होती है। श्वास भी तीव्र चलता है। एक मिनट में ३० से ४० बार तक श्वास आता है। युवावस्था में एक मिनट में १४ से १८ बार श्वास-क्रिया होती है। बच्चा श्वास लेने में उदर की पेशियों की अधिक सहायता लेता है। वृक्क अपना काम खूब करते हैं। बच्चे में मूत्र को रोकने की शक्ति नहीं होती।

मस्तिष्क का भार छठे मास तक दुगना हो जाता है।

सारा मस्तिष्क एक समान नहीं बढ़ता। आगे का भाग इतना अधिक नहीं बढ़ता जितना कि पीछे का या लघु मस्तिष्क (Cerbellum) बढ़ता है। यद्यपि मस्तिष्क का आकार या भार इतना अधिक बढ़ता है किन्तु विचार शक्ति का इतना अधिक विकाश नहीं होता। नाड़ी मंडल के सेल (New cells) इस समय तक पूर्ण विकसित नहीं होते। वे केवल प्रोटोप्लाज़्म के बिन्दु होते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि जन्म के समय ही नाड़ी मंडल के सारे सेल बन चुकते हैं, उनकी संख्या में कुछ वृद्धि नहीं होती। किन्तु वे सब शैशव अवस्था में होते हैं। परिपक्व नहीं होते। बच्चे की आयु के बढ़ने के साथ उनमें भी वृद्धि होती है और कुछ समय में वे पूर्ण हो जाते हैं। पहले केवल नीचे केन्द्र उपस्थित होते हैं जैसे रोना, सोना, भूख इत्यादि। आयु के अधिक होने पर मस्तिष्क के ऊँचे केन्द्र भी बनने लगते हैं।

सब से पहले मस्तिष्क में दो बातों के अनुभव करने की शक्ति उत्पन्न होती है। जब बाहर की सब दशायें अनुकूल न होती हैं तब बच्चा सुख अनुभव करता है। उनके अनुकूल होने पर वह दुःख का अनुभव करने लगता है। इसके पश्चात बच्चा प्रसन्न होना सीखने लगता है। भोजन से वह प्रसन्न होता है। लगभग ३५ दिन की अवस्था पर वह मुस्कराने लगता है। कुछ समय पश्चात् स्पर्श, दुःख और उष्णता का अनुभव करता है। यह दुःख का अनुभव प्रथम अनुभव से भिन्न

होता है। प्रथम वह केवल यह समझ सकता है कि वह दुखी है या सुखी। अब उसमें यह समझने की शक्ति उत्पन्न होजाती है कि अमुक स्थान पर दुख हो रहा है। बच्चे में सुनने और देखने की शक्ति जन्म से ही होती है। किन्तु उस समय अधिक दूर की वस्तु को बच्चा नहीं देख सकता। आयु के बढ़ने के साथ इन केन्द्रों का भी पूर्ण विकास हो जाता है।

ये केन्द्र जन्म के समय किस दशा में रहते हैं, वे किस प्रकार से बढ़ते हैं, यह गूढ प्रश्न है। केन्द्र विकास की क्रिया भी साधारण नहीं है। देखने में एक निरीक्षण केन्द्र ही काम नहीं करता किन्तु मांसपेशियों का केन्द्र, विचार संयोजक केन्द्र इत्यादि सब काम करते हैं।

जन्म पर मांसपेशियों की क्रिया होती है। बच्चा हाथों और पावों से बहुत शीघ्रता से क्रिया करवाता है किन्तु यह सब किसी विशेष अभिप्राय से नहीं होती। उनकी क्रिया बच्चे के इच्छा के अधीन नहीं होती। तीसरे महीने पर बच्चे में इतनी शक्ति आ जाती है अथवा उसकी नाड़ी उसके इच्छाधीन हो जाती है कि वह उनसे जो वस्तु चाहे पकड़ ले। देखने की शक्ति भी बढ़ जाती है। इस समय बच्चा नेत्र की पेशियों को ठीक प्रकार प्रयोग कर सकता है। प्रकाश को बड़े ध्यान से देखता है।

छठे महीने तक बच्चे को दूरी और दिशा का भी ज्ञान होने

लगता है। वह भय और अप्रसन्नता प्रगट करता है। उस में वस्तु को पकड़ने की शक्ति आ जाती है।

इस अवस्था में बच्चे का शरीर कोमल होता है। उसकी शक्तियों का भी अभी तक पूर्ण विकास नहीं होता। रोग को रोकने की शक्ति इस समय तक बहुत कम होती है। इस कारण बच्चे को रोग सहज में हो जाते हैं। रोग के जो जीवाणु एक युवा पुरुष के शरीर में स्थान नहीं पा सकते अर्थात् स्वाभाविक शक्तियों द्वारा नष्ट हो जाते, वे बच्चे के शरीर में प्रवेश करके अपना कार्य-क्रम आरम्भ कर देते हैं। तनिक सी भोजन की असावधानी, गन्दे स्थानों में रहना, शुद्ध वायु का न मिलना ऐसी सब बातों का बच्चे पर पूरा प्रभाव पड़ता है और वह रोगग्रस्त हो जाता है। बच्चे की शरीर-वृद्धि इन सब बातों पर निर्भर करती है। जो बच्चे अधिक रोगग्रस्त रहते हैं उनका शरीर दुबला रह जाता है; क़द भी नहीं बढ़ने पाता और यह दुर्बलता उनके जीवन भर रहती है। अशुद्ध वायु और भोजन में किसी प्रकार की त्रुटि का बच्चों पर जितना शीघ्र प्रभाव पड़ता है उतना युवा मनुष्यों पर नहीं पड़ता।

इस समय नाड़ी मंडल ऐसा अस्थिर होता है कि तनिक से कारण से भी नाड़ी-विकार के चिन्ह उत्पन्न हो जाते हैं। पाचन में किसी प्रकार का विकार होने से, जैसे मन्दाग्नि या दस्तों का आना, नाड़ी-मंडल उत्तेजित हो जाता है। जो

चिन्ह बड़ी अवस्था में भयंकर रोगों में होते हैं वे बच्चों में साधारण दशाओं में उत्पन्न हो जाते हैं। उचित भोजन का न मिलना, अधिक भोजन खिलाना अथवा समय पर भोजन देने का नियम न पालन करना इन रोगों का कारण होता है। अनुचित भोजन से और भी बहुत से विकार पैदा होते हैं। बच्चे के शरीर की पूर्ण वृद्धि नहीं हो सकती; रिकेटस, स्कर्वी इत्यादि का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। सूखे का रोग, पांडु रोग और कुछ और रोग भी अनुचित भोजन ही का परिणाम होते हैं। भोजन के द्वारा जीवाणु भी सहज में पहुँच कर रोग उत्पन्न कर देते हैं। दूध के द्वारा मोतीझरा, विरेचन, संग्रहणी हैज़ा या राजयक्ष्मा के जीवाणु अंतड़ियों में पहुंच सकते हैं।

कुछ रोग ऐसे हैं जिन से बच्चा स्वभावतः मुक्त होता है। गल गंडमाला, चेचक, डिप्थीरिया नौ महीने तक बच्चे को नहीं होते। मोतीझरा भी कम होता है। ख़सरा, कुकुर खाँसी, फुप्फुस के रोग इस अवस्था में बहुत होते हैं।

जैसे ऊपर कई बार कहा जा चुका है शुद्ध वायु और किसी विशेष स्थान की जलवायु का बच्चे पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जहां छोटे स्थानों में बहुत से मनुष्य रहते हैं वहां का वायु-मंडल शुद्ध नहीं रह सकता। प्रायः लोगों में ऐसी आदत होती है कि जाड़े के दिनों में कमरों की सब खिड़कियाँ या दर्वाज़े बन्द कर लेते हैं जिस से बाहर की शुद्ध

वायु भीतर किसी प्रकार भी नहीं आ सकती। रात्रि भर कमरे की वन्द वायु में श्वास लिया करते हैं। इस प्रकार जिस वायु को श्वास द्वारा बाहर निकालते हैं वही फिर फुप्फुस में जाती है। अन्त में जिस समय दूसरे दिन खिड़कियाँ खुलती है उस समय तक इस वायु में ओषजन बहुत थोड़ी रह जाती है और कर्वन-द्विओषिद से मंडल परिपूर्ण हो जाता है। यदि ऐसे मंडल में बच्चे को रक्खा जाय तो वह केवल यहाँ की वायु ही से बीमार पड़ जायगा। वायु मंडल का तनिक सा भी दोष उसके स्वास्थ्य को गिरा देने को काफ़ी है और जीवाणुओं के कार्य और वृद्धि में इस से बहुत सहायता मिलती है।

अधिक उष्णता जो किसी कारण से उत्पन्न हुई, चाहे अधिक वस्त्र से या उष्ण वायु मंडल से या किसी दूसरे कारण से उत्पन्न हुई हो, सदा बच्चे के लिये हानिकारक है। अधिक उष्णता से उनको पसीना अधिक आता है; इससे वे कमज़ोर होते हैं और तनिक सी भी ठंढ लगने से रोगग्रस्त हो जाते हैं। उनको आरम्भ ही से खुले स्थान में रखना चाहिये जिससे वे ठंढ के अभ्यस्त हो जाँय।

दूसरी अवस्था

यह अवस्था नौ महीने से तीन वर्ष तक रहती है। इस समय बच्चे का दूध छोड़ना, दाँतों का निकलना, बोलने और चलने की शक्ति

का उत्पन्न होना, विचार शक्ति का बढ़ना इत्यादि मुख्य बात हैं।

मस्तिष्क की वृद्धि बहुत शीघ्रता से होती है। इस अवस्था के समाप्त होने के समय तक सारी आयु की वृद्धि का $\frac{१}{३}$ भाग बढ़ जाता है अर्थात् मस्तिष्क में समस्त आयु में जितनी वृद्धि होती है उसका $\frac{२}{३}$ भाग तीसरे वर्ष तक समाप्त हो जाता है। शेष जीवन में केवल $\frac{१}{३}$ वृद्धि होती है। विचार शक्ति भी साथ में बढ़ती है यद्यपि उसमें इतनी अधिक उन्नति नहीं होती जितनी कि मस्तिष्क के आकार और भार में होती है।

चेहरे की आकृति और खोपड़ी की अस्थियों में भी परिवर्तन होते है। खोपड़ी की सब अस्थियाँ मिल जाती हैं और वह कोमल स्थान जो छोटी आयु में नरम मालूम होते थे कड़े पड़ जाते हैं। दाँतों के निकलने से जबड़े का आकार बड़ा होता है और पहले से बदल जाता है। चाबने से भी उस पर प्रभाव पड़ता है। साथ में मुख की मांस-पेशियों में भी वृद्धि होती है।

दाँतों के निकलने का क्रम पहले बताया जा चुका है। यह एक स्वाभाविक क्रिया है किन्तु तो भी इसमें बहुत सी कठिनाइयाँ और स्वास्थ्य-विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ थोड़े से ऐसे बच्चे होते हैं जिनको दाँत निकलने के समय में किसी भाँति का कष्ट नहीं होता। अधिक संख्या ऐसी है जो रोग-

ग्रस्त होकर बहुत दुःख उठाते हैं। नाड़ी-मंडल इस समय में उत्तेजित रहता है। नींद न आना, बहुत रोना, चिड़चिड़ा हो जाना, शरीर में दरद होना, दस्त आना, इत्यादि साधारण चिह्न हैं। भूख जाती रहती है, स्वास्थ्य गिर जाता है जिससे शारीरिक शक्ति कम हो जाती है। इस समय में दूसरे रोग आसानी से हो जाते हैं। जबड़ों पर दर्द रहता है। बच्चे के भोजन न करने का यह भी एक कारण होता है किन्तु स्वास्थ्य का ठीक न रहना सब से बड़ा कारण है।

इसी अवस्था में बच्चा मांस-पेशियों का ठीक ठीक प्रयोग करना सीखता है और इससे उसके शरीर और अस्थियों की वृद्धि में बहुत सहायता मिलती है।

जहां शरीर के अंगों में इतनी वृद्धि होती है वहां शारीरिक क्रियाएं भी बहुत बढ़ जाती हैं। अंगों के बढ़ने और पूर्ण होने के साथ उनकी क्रिया भी पूर्ण होने का उद्योग करती है। दाँत निकलने के साथ ही मौखिक रस (Saliva) अधिक बनने लगता है जिससे श्वेत सार (Starch) के पचने में बहुत सहायता मिलती है। मौखिक रस न केवल अधिक बनता ही है किन्तु उसकी पाचन शक्ति भी बहुत बढ़ जाती है। इसी से कर्बोज (Carbohydrate) भोजन भली भाँति पच जाता है। दाँतों के निकलने पर चबाने की शक्ति बढ़ती है। इसीलिये इस समय भोजन में केवल तरल पदार्थ, जैसे दूध, ही न होने चाहियें। दाँतों का निकलना इस बात को बताता है कि बच्चे

को अब पूर्ण भोजन की आवश्यकता है और उसको भोजन के ठोस पदार्थ भी अब मिलने चाहियें।'

मौखिक रस के साथ आमाशय में अभिद्रव-हरिकाम्ल (Hydrochloric acid) भी अधिक बनने लगता है। इस से जीवाणुओं को नाश करने की शक्ति उत्पन्न होती है। पहले की भाँति अब बच्चा इतनी जल्दी कै नहीं करता। भोजन के पदार्थों से अब आमाशय की दीवारों की उत्तेजना नहीं बढ़ती। प्रोटीन को पचाने की शक्ति बढ़ जाती है। वसा (चर्बी) को पचाने और ग्रहण करने की शक्ति इस समय शरीर में बहुत होती है। इसलिये इस समय बच्चे के भोजन में वसा का भाग अधिक होना चाहिये। इसी भाँति शरीर में वृद्धि होने के कारण प्रोटीन की भी बहुत आवश्यकता होती है।

हृदय की गति पहले की अपेक्षा कम हो जाती है। नौ महीने पर नाड़ी की गति ११५ प्रति मिनट के लगभग होती है। दूसरे वर्ष के आरम्भ होते समय तक वह १०० रह जाती है। हृदय की धड़कन भी पहले की भाँति तनिक तनिक सी बातों से नहीं घटती बढ़ती। और सब शक्तियों की भाँति हृदय की शक्ति भी बढ़ती है। इसी भाँति श्वास लेने के अंगों की शक्ति का भी विकास होता है।

सारे शरीर की मांस-पेशियों में वृद्धि होती है। दूसरे अंगों की वृद्धि में इससे बहुत सहायता मिलती है। जब वक्ष की मांसपेशी काम करती हैं तब उनकी क्रिया से फुप्फुस

फैलते हैं। अतएव उनकी भी शक्ति बढ़ती है। इसी प्रकार मांसपेशी मस्तिष्क के भिन्न भिन्न केन्द्रों की वृद्धि का भी कारण होती है। पेशियों के दृढ़ होने से बच्चे में चलने फिरने और खड़े होने की शक्ति आती है। इसी कारण से प्रथम वर्ष के समाप्त होने तक बच्चा खड़े होने का उद्योग करने लगता है; हाथों से वस्तुओं को दृढ़ता से पकड़ने लगता है। जब रानों की पेशियां और मज़बूत हो जाती हैं तब बच्चा चलने का उद्योग करता है।

इसी प्रकार विचार शक्ति भी बढ़ती है। प्रथम वर्ष बच्चे से जो कुछ कहा जाता है, उसे वह कुछ कुछ समझने लगता है। किसी प्रकार अपने कुछ भाव भी प्रगट करता है, बाबा, मामा शब्दों ही का पहले उच्चारण करता है। दूसरे वर्ष में यह शक्ति बढ़ जाती है। दूसरे मनुष्यों से सुने हुए वस्तुओं के नाम इत्यादि बोलने का बच्चा उद्योग करता है।

इस समय बच्चे के चित्त में विचित्र और अनेक भावनाएं उठा करती हैं। बच्चे के सब खेल इन्हीं भावनाओं के परिणाम होते हैं। जिस समय जिस ओर इच्छा हुई उसी ओर को चल दिये, जिस काम को जी चाहा वही कर डाला। ये सब भावनाएं क्षणिक होती हैं और तुरंत ही उनका अंत हो जाता है। किन्तु भावी जीवन के स्वभावों की नींव यहीं से पड़ती है। इन्हीं क्षणिक भावनाओं से वे आदतें बनती हैं जो जीवन भर नहीं छूटतीं। अतएव इन

भावनाओं को कहीं कहीं रोकने की आवश्यकता है। सबों को परिणाम स्वरूप में परिणत होने का अवसर नहीं देना चाहिये। यदि बच्चा कोई अनुचित कार्य करना चाहे तो उसे ज़रूर रोकना चाहिये। समस्त छोटी आयु में बच्चे को इस प्रकार रोकने की आवश्यकता है। जो बच्चे लाड़ प्यार में स्वतंत्र कर दिये जाते हैं और अपनी इच्छा के अनुसार सब काम करते हैं, उनका जीवन प्रायः नष्ट हो जाता है। उनको ऐसे दुर्व्यसन पड़ जाते हैं जो आगे चलकर नहीं छूट सकते। अतएव इसी समय से उन पर आँख रखना आवश्यक है।

प्रथम अवस्था की भाँति इस अवस्था में भी अंगों में बहुत वृद्धि होती है। इसलिये यदि शरीर की आवश्यकताएँ पूरी होने में किसी भाँति से कोई कमी होती है अर्थात् आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त भोजन नहीं मिलता तो उसका बच्चे पर बहुत हानिकारक प्रभाव होता है। शरीर की वृद्धि नहीं हो सकती। मस्तिष्क की शक्तियों का भी यही हाल होता है।

बच्चा खड़ा होना सीखता है। कुछ समय के पश्चात् चलने का उद्योग करता है। इससे उसके सारे शरीर का बोझ उसकी टाँगों पर पड़ता है। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का प्रभाव पड़ता है और शरीर के आकार में कुछ परिवर्त्तन होने लगते हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यदि शरीर के पोषण और वृद्धि के लिये उचित भोजन नहीं मिल

रहा है तो संभव है कि कुछ समय के पश्चात् बच्चे के शरीर की हड्डियां टेढी पड़ जांय। टांगों की हड्डियां मुड़ जांय। पीठ आगे की ओर झुक जाय, इस रोग का प्रथम ही वर्णन किया जा चुका है। इन सब कारणों से बच्चों के भोजन के संबंध में बहुत ही सावधान रहना आवश्यक है।

इस समय में भोजन के विषय में सावधानी की एक और भी आवश्यकता है। बच्चों का स्वभाव होता है कि जो कुछ भी उनके हाथ में आ जाता है उसे वे मुँह में रख लेते हैं। जब तक वे एक ही स्थान में लेटे या बैठे रहते हैं तब तक उनको अधिक वस्तुएं मिलने का कम अवसर मिलता है किन्तु जब चलना आरम्भ करते हैं तब जो वस्तु भी चाहते हैं उसे उठा लेते हैं। इस से सदा यह भय रहता है कि जो वस्तुएं वे मुँह में रखें उनके साथ रोगों के जीवाणु भीतर न चले जांय। इस कारण जहां पर्याप्त और उचित भोजन मिलना आवश्यक है वहां इस बात का ध्यान रखना भी उतना ही आवश्यक है कि बच्चे के मुँह में शुद्ध भोजन की वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरी वस्तुएं न पहुँच सकें।

इसी अवस्था में बच्चे को माता का दूध छुड़ाया जाता है। दाँत भी इसी समय में निकलने आरम्भ होते हैं। जिन बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा होता है अथवा शरीर पुष्ट होता है उनको कुछ कष्ट नहीं होता किन्तु जो बच्चे पहले ही से दुर्बल और रोगी होते हैं उनको बहुत कष्ट होता है। जैसा पहले कहा जा

चुका है भोजन ठीक न मिलना ही अधिकत्तर इसका कारण होता है। जब दाँत निकलते हैं तो जबड़े की हड्डी बढ़ती है और साथ में मुँह की मांसपेशी भी मज़बूत होती हैं। इस समय ऐसा भोजन जिसे दाँतों से चबाना पड़े मिलना बहुत आवश्यक है। क्योंकि उस से माँसपेशियों को कार्य मिलेगा और हड्डी पर भी भार पड़ेगा। साथ में मुँह की स्वच्छता की ओर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

इस आयु पर चेचक, कुकुर खांसी और डिप्थीरिया अधिक होते हैं। दूसरी किसी आयु की अपेक्षा डिप्थीरिया इस आयु में अधिक होता है। मोतीझरा भी बहुत होता है। खसरा बहुत नहीं होता।

राजयक्ष्मा इस अवस्था में बहुत साधारण रोग है। इस रोग के जीवाणु मस्तिष्क की झिल्लियों पर बहुधा आक्रमण करते है और Tuberculous meningitis नामक रोग उत्पन्न करते हैं। अँतड़ियों का रोग भी सब से अधिक इसी अवस्था में होता है और अधिकतर घातक होता है। अनुचित भोजन ही इसका मुख्य कारण है। इसी प्रकार गले की तथा वक्ष की ग्रन्थियां भी इस रोग से ग्रस्त होकर फूल जाती हैं। कभी कभी यह रोग अस्थियों में प्रवेश कर के उनको नाश कर डालता है। रिकेट्स भी इसी अवस्था में अधिक होता है। इससे भली भाँति विदित है कि शुद्ध स्वच्छ वायु

प्रकाशमय स्वच्छ वास-स्थान, उचित व्यायाम और उत्तम भोजन की कितनी अधिक आवश्यकता है।

तीसरी अवस्था

तीन वर्ष से बारह वर्ष तक, नौ वर्ष का समय बहुत होता है। इस समय में परिवर्तन भी बहुत होते हैं। ना-समझ बच्चे की दशा से बढ़ कर युवावस्था का समय आ जाता है। छः वर्ष पर पहुँच कर बालक के शरीर की लम्बाई दुगनी हो जाती है और शरीर का भार जन्म के समय से छः गुना बढ़ जाता है। बारह वर्ष की अवस्था में पहुँच कर बालक का शरीर लगभग १ फुट के और लम्बा हो जाता है और भार भी अनुमान १५ सेर के बढ़ जाता है।

यह वृद्धि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में अधिक होती है। जन्म ही से लड़कों के शरीर की ऊँचाई अधिक होती है, उनका शरीर-भार भी अधिक होता है, शरीर की बनावट मज़बूत और पुष्ट होती है, लड़कियों की अपेक्षा वे अधिक तीव्र और चंचल होते हैं। लड़कियों में स्वभाव ही से लज्जा का अंश होता है। वे लड़कों के बराबर चंचल और वाचाल नहीं होतीं। वे भागने दौड़ने, कूदने फांदने की अपेक्षा हरएक बात को ध्यान से देखती और समझने का उद्योग करती हैं। उनका शरीर अधिक कोमल होता है जो कठिनाइयों को सहने की सामर्थ्य नहीं रखता। लड़के के शरीर को प्रकृति ही स्वयं ऐसा बनाती है कि वह आपदाओं और कठिनाइयों

को झेल सके। किन्तु यह अन्तर बारह वर्ष की आयु तक इतना अधिक स्पष्ट नहीं होता। उसके पश्चात् युवावस्था आने पर शरीर के अगों और शक्तियों का पूरा विकाश होता है। लड़के का वक्ष चौड़ा हो जाता है। कन्धे गोल हो जाते हैं, और चाल में युवावस्था की झलक आने लगती है। स्वाभाविक प्रवृतियां भी जाग्रत हो जाती है। लड़कियों में लज्जा का अंश बढ़ जाता है, अंगों में गोलाई और सुडौलपना आ जाता है। वे अपनी स्थिति को समझने लगती हैं।

इस अवस्था के आरम्भ होने के समय बच्चे के शरीर में बहुत शक्ति होती है, पेशियां सदा काम करने को तय्यार रहती हैं, स्मरण शक्ति और पाचन शक्ति तीव्र होती है। बालक के शरीर में भोजन को ग्रहण करने की सामर्थ्य काफ़ी होती है। यह समय वृद्धि का होता है। इसलिये भोजन की शरीर को बहुत आवश्यकता रहती है। हृदय की शक्ति भी बढ़ती है। बच्चा अधिक समय किसी न किसी प्रकार के व्यायाम में व्यतीत करता है, दौड़ता है, खेलता है, इसी प्रकार कुछ न कुछ क्रिया ही करता है। इससे हृदय को भी अधिक काम करना पड़ता है; उसका भी व्यायाम होता रहता है। धीरे धीरे इसी प्रकार उसकी भी शक्ति बढ़ जाती है। नाड़ी की गति कम हो जाती है और हृदय की गति में भी पहले की भाँति घटा बढ़ी नहीं करती। उस में स्थिरता आ जाती है।

स्नायु मंडल भी पहले की भांति अस्थिर नहीं रहता। विशेष अंगों की क्रिया जैसे मूत्र-त्याग इत्यादि उसकी इच्छा के अधीन हो जाती हैं। देह का धर्म भी अधिक कठिन हो जाता है जिससे बाह्य दशाओं का प्रभाव बहुत शीघ्र नहीं होता। विचार-शक्ति का बढ़ना आरम्भ हो जाता है। ज्यों ज्यों बच्चा बाहर की वस्तुओं को देखता और समझता है, त्यों त्यों उसकी कल्पना बढ़ती है। उसके मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होने लगते हैं और उसके साथ ही शब्दों का ज्ञान भी बढ़ता है। अपने विचारों को प्रकाश करने की शक्ति भी साथ ही बढ़ती है।

सात या आठ वर्ष की अवस्था में बालक की शिक्षा आरम्भ करवा दी जाती है। यों तो जब से बालक समझने लगता है तब ही से उसकी शिक्षा आरम्भ हो जाती है। जो बातें वह चारों ओर देखता है, जिनके साथ रहता है। उनसे वह पहले पहल शिक्षा ग्रहण करता है। इसी से कहा जाता है कि माता सबसे बड़ी शिक्षका है। इस अवस्था में बालक को स्कूल भेजने का प्रश्न उठता है। तात्पर्य उसकी उचित शिक्षा से है, चाहे वह घर पर हो या स्कूल में। शिक्षा में खेल और पाठ दोनों ही का समान ध्यान रखना चाहिये। खेल से बच्चे को कुछ कम शिक्षा नहीं मिलती। यदि एक पर अधिक ध्यान दिया जायगा और दूसरे की तनिक भी परवाह न की जायगी तो बच्चे के शरीर और मस्तिष्क की वृद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

आठ वर्ष से कम आयुवाले बच्चों के लिये दो घंटे प्रति-

दिन से अधिक एक जगह बैठ कर शिक्षा देना उचित नहीं। उनका स्कूल प्रतिदिन दो घंटे से अधिक न होना चाहिये। इस से अधिक काम लेने से उनका स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। बारह वर्ष की अवस्था पर चार घंटे प्रतिदिन शिक्षा होनी चाहिये। जो बच्चे स्कूल में पढ़ने जाते हैं उन को घर के लिये बहुत हलका काम देना चाहिये।

स्वास्थ्य और शारीरिक शक्ति स्कूल की शिक्षा से कहीं अधिक आवश्यक है। शक्ति से अधिक काम करने से शरीर में श्रम आ जाता है, कमज़ोरी हो जाती है जिससे रोगों के आक्रमण से रक्षा करने की शक्ति कम हो जाती है।

बहुत से रोग जो पहली अवस्थाओं में बहुत होते हैं इस अवस्था में नहीं होते। रिकेट्स इस अवस्था में बहुत कम होता है। बहुधा यह होता है कि जो रोग पहली आवस्थाओं में हो चुकते हैं वा पैतृक होते हैं जैसे सिफलिस, इनके परिणाम इस अवस्था में स्पष्ट होते हैं। इन से शरीर की वृद्धि में अन्तर पड़ता है। आरम्भ में अर्थात् ३ वर्ष के लगभग चेचक बहुत होती है किन्तु ज्यों ज्यों आयु बढ़ती है त्यों त्यों यह रोग भी कम होता है। कुकुर खाँसी तीसरे वर्ष तक बहुत होती है किन्तु पश्चात् कम हो जाती है। कनफरे और मोतीझरा काफी होते हैं। राजयक्ष्मा, विशेष कर गांठों की, बहुत साधारण है। बहुधा रोग के जीवाणुओं का प्रवेश इस अवस्था में नहीं होता। किन्तु पिछली अवस्था में रोग-प्रवेश

के चिन्ह प्रत्यक्ष होते हैं। गले, वक्ष और उदर की गाँठें ही अधिकतर फूलती हैं। चेचक या निमोनिया के आक्रमण के पश्चात् रोग के जीवाणु फुफ्फुस में प्रवेश कर जाते हैं और कुछ समय के पश्चात् जब रोग के चिह्न प्रगट होते हैं तब मालूम होता है कि यथार्थ में रोगी आरोग्य कभी हुआ ही नहीं था। केवल रोग का परिवर्त्तन हो गया था।

इस समय मुँह की स्वच्छता की ओर बहुत ध्यान देना चाहिये। यदि मुँह में कोई दाँत ऐसा हो जिसमें कीड़ा लगा हो तो उसे तुरंत ही निकलवा देना अथवा भरवा देना चाहिये। जब एक दाँत में कीड़ा लग जाता है तो उसके पास के दूसरे दाँतों में भी वह लग जाता है। ऐसे दाँत से शरीर को बहुत हानि पहुँचती है। मुँह में दुर्गन्ध आने लगती है; दाँत के टुकड़े टूट कर भोजन के साथ आमाशय में पहुँचते हैं और वहां विकार उत्पन्न करते हैं। मुँह में इन सड़े हुए स्थानों में विष बनते हैं और भोजन के साथ अँतड़ियों में पहुँचते हैं। परिणाम स्वरूप मंदाग्नि, विरेचन इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर भोजन नहीं ग्रहण करता। बालक दुर्बल और चिड़चिड़ा हो जाता है, यहां तक कि कभी कभी उसे पांडु रोग हो जाता है।

युवावस्था

युवावस्था के आरम्भ होने पर शरीर में अनेकों परिवर्त्तन होते हैं। जिसकी पहली अवस्थाएं ठीक रही हैं उसका शरीर अब स्वास्थ्य से परिपूर्ण हो जाता

है। शरीर वलिष्ट होता है, अंग सुडाल होते हैं, गले का शब्द बदल जाता है। इन वाह्य परिवर्त्तनों के साथ उसके विचारों में भी परिवर्त्तन होता है। वह संसार में अपनी स्थिति समझने लगता है और अपने कामों में स्वतंत्र हो जाता है। मैथुन शक्तियों का भी विकास होता है। लड़कियों में इस समय का आरम्भ रजोदर्शन के साथ होता है। युवावस्था का समय जब लड़के को मैथुन की इच्छा होती है और लड़कियों को रजोदर्शन होता है देश और काल के अनुसार भिन्न भिन्न होता है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में यह समय जल्दी आता है। ठंढे देशों की अपेक्षा गरम देशों में भी यह अवस्था शीघ्र आरम्भ होती है। इसके अतिरिक्त रहन सहन भोजन परिवार इत्यादि का भी प्रभाव होता है। जो धनाढ्य घर की लड़कियां होती हैं और आमोद प्रमोद में जिनके दिन जाते हैं उनमें गरीबों की अपेक्षा जिनको अपने भोजन के लिए परिश्रम करना पड़ता है, रजोदर्शन शीघ्र होता है। जिनका शरीर पुष्ट होता है, हड्डियां चौड़ी और मज़बूत होती हैं और जिनको तनिक सी बात में क्रोध आ जाता है अथवा जो शीघ्र ही प्रसन्न भी हो जाती हैं ऐसे स्वभाववाली लड़कियों को ऋतुस्राव शीघ्र आरम्भ हो जाता है। यह युवावस्था का समय विशेष कर चौदह से बीस वर्ष तक ऐसा समय है जब कि लड़कों पर सब से अधिक आँख रखने की आवश्यकता है।

इस समय शरीर की सब शक्तियां पूर्ण होती है, मन में चंच-लता भरी होती है। चित्त पर अधिकार नहीं होता। मस्तिष्क की ऐसी अवस्था होती है कि उस पर प्रत्येक भाँति का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ता है।

जीवन में दूसरे किसी समय पर वाह्य दशाओं का चाहे वे बुरी हों या भली हों मस्तिष्क पर इतना शीघ्र अधिकार नहीं जमता। इस समय लड़के की जो आदतें पड़ जायंगी, उसकी शरीरिक मानसिक तथा आत्मिक दशा इन दिनों में जैसी बन जायगी वैसी ही जन्म भर रहेगी। मनुष्य जाति का ऐसा बहुत बड़ा भाग है जिसकी शरीरिक और मानसिक दशा निकृष्ट है और जिसको नाना प्रकार के दुर्व्यसन हैं। जिनके जीवन को संसार के आनन्द से वंचित करके उनके लिये उसे यमयातना के समान बना दिया है ऐसे लोगों के दुर्भाग्य का चक्र इसी अवस्था से आरम्भ होता है और जिस समय उनका सांसारिक जीवन आरम्भ होता है वे परिवारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के बिलकुल अयोग्य होते हैं। सांसारिक संग्राम में सफल होना या असफल होना इसी अवस्था पर निर्भर करता है। आगे चलकर जीवन में जो कुछ मिलता है उसका बीज इसी अवस्था में पड़ता है। तनिक भी बुरी संगत होने पर लड़के का अधोपतन हो जाता है। इसलिये बहुत आवश्यक है कि लड़कों पर कड़ी निगाह रखी जाय।

कभी कभी यह आवस्था बहुत जल्दी आ जाती है अथवा कभी बहुत देर से आती है। दोनों ही दशाओं में शरीर में दर्द होना, शिर का भारी रहना, पाचन ठीक न होना, इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

इस अवस्था में शरीर की आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं इसलिये अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। पाचक अंगों को भी बहुत काम करना पड़ता है। मन्दाग्नि की शिकायत बहुत रहती है। लड़कियों को पांडु रोग हो जाता है। स्नायु मंडल पर भी बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ता है। इस कारण सिर-दर्द का होना, आँखों में कमज़ोरी मालूम होना, स्वाभाव का चिड़चिड़ा हो जाना इत्यादि साधारण बातें हैं।

उत्तम भोजन पर्याप्त मात्रा में मिलना बहुत आवश्यक है। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी कोई बात न हो जिससे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़े और शरीर की स्वाभाविक वृद्धि रुके। ऐसे कमरों में बहुत समय तक काम करना जहां पूरा प्रकाश न हो या स्वच्छ वायु न आती हो हानिकारक है। रात्रि के समय आठ या दस घंटे की नींद आवश्यक है।

छोटी अवस्था में बच्चा एक नवीन कोमल पौदे के समान होता है। जिधर को चाहे उसको झुका लो। इस समय में उनकी जैसी आदत पड़ जाती है फिर वह जीवन भर नहीं जाती। जो बातें वे इस समय सीखते या देखते हैं उनका प्रभाव स्थायी होता है। जीवन

बाह्य दशाओं का प्रभाव

पर्यन्त रहता है। यदि बड़े होने पर उनको बदल देना चाहें तो यह कठिन हो जाता है।

इस समय में बच्चा जो कुछ देखता है या जिनके साथ रहता है उन्हीं के आचरण इत्यादि से शिक्षा ग्रहण करता है। दूसरी इन्द्रियों की अपेक्षा नेत्र द्वारा बच्चा भावों को जल्दी ग्रहण करता है। वह जो कुछ देखता है उसको नहीं भूलता। अनेकों उपदेशों की अपेक्षा एक उदाहरण उत्तम है। छोटी अवस्था में मस्तिष्क के उन्हीं केन्द्रों का अधिक विकाश होता है जिनका नेत्र या कानों के साथ सम्बन्ध है। सौन्दर्य, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, उत्तम तसवीरें, स्वच्छ स्थान, सुन्दर वस्त्र, मधुर वाणी इत्यादि का बच्चे पर उत्तम प्रभाव पड़ता है। वह इन दशाओं में रह कर या इन वस्तुओं को देख कर बहुत प्रसन्न होता है और उसको शारीरिक और मानसिक दोनों तरह का लाभ होता है। छोटा बच्चा भी जो अधिक नहीं समझ सकता स्वच्छता को पसन्द करता है और गन्दी और मैली वस्तुओं से दुःखी होता है। अवस्था बढ़ने पर बच्चा संगीत, सुन्दर दृश्य, तसवीरों को बहुत पसन्द करता है।

छोटे बच्चों तक पर संगीत का प्रभाव होता है। बहुधा रोते हुए बच्चों को चुप करने के लिये माताएँ लोरी गाने लगती हैं और बच्चा चुप हो जाता है। ये सब बातें विचार और कल्पना शक्ति को पुष्ट करती हैं और मस्तिष्क के विकाश को पूर्ण करती है। उचित संगीत या दृश्य या तसवीरों इत्यादि

से बच्चे के स्वभाव में परिवर्तन किया जा सकता है। एक रोने वाला चिड़चिड़े स्वभाव का बच्चा हँसमुख और सदा प्रसन्न रहनेवाला बनाया जा सकता है; एक कृश दुर्बल और सुस्त बच्चे को शारीरिक और मानसिक व्यायाम की ओर उत्तेजित करके उसे तीव्र और पुष्ट बनाया जा सकता है। इसके विरुद्ध भयानक दृश्य, कुरूप चेहरे, गन्दी और बुरी तसवीरें, लड़ाई, कलह, इत्यादि से बच्चे को बहुत हानि पहुँचती है। यह साधारण बात है कि जो सुन्दर तसवीरें या खिलोने होते हैं उनको बच्चे लेते हैं, किन्तु भद्दे खिलौने और तसवीरों के पास नहीं जाते। बच्चों को स्वभाव ही से सौंदर्य और माधुर्य से प्रेम होता है। जहां उत्तम दशाओं में रहने से बच्चों की सब शक्तियाँ बढ़ती हैं, वहां बुरे मनुष्यों और स्थानों में रहने से उनकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाएं बिगड़ सकती हैं।

जिन मनुष्यों के साथ में बच्चा रहता है उनके आचरण बच्चे के लिये उदाहरण स्वरूप होते हैं। यदि वे आपस में सज्जनता का व्यवहार करते हैं, प्रेम और मेल से रहते हैं, एक दूसरे पर क्रोध नहीं करते, स्वभाव उत्तम रखते हैं और दीनों का हित करते हैं तो इन गुणों का बच्चे पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ेगा, वह इन गुणों का अनुसरण करेगा। किन्तु यदि वे धूर्त्त हैं, सदा लड़ते हैं, बुरे आचरण करते हैं, पाप कर्मों में लिप्त रहते हैं तो इस दशा में भी बच्चा इनका अनुसरण करेगा।

और इन सब दुर्गुणों का पात्र बन जायगा। यदि पिता का क्रोधी स्वभाव है, माता बच्चे को तनिक तनिक सी बातों पर डराती और धमकाती है; झूठ बोल कर बच्चे को धोखा देती है, जो मित्र या मिलनेवाले घर पर आते हैं उनका वार्तालाप सदा गन्दा और अशुद्ध होता है तो बच्चा भी यही सीखेगा। जैसा परिवार वालों को बच्चा करता देखेगा, वह वैसा ही करेगा। उनके विचार उसके विचार बन जांयगे। जो कुछ वे मानते हैं अथवा जिन बातों में परिवार वाले विश्वास करते हैं उन्हीं को यह भी मानेगा। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो यद्यपि उत्तम गुणों का वर्णन तो सहस्र मुख से करते हैं, किन्तु उसके अनुसार कार्य कभी नहीं करते, जो माता या पिता स्वच्छता की बहुत बड़ाई करते हैं किन्तु बच्चे को कभी स्वच्छ रखने का प्रयत्न नहीं करते, उनका बच्चा भी बड़ा होकर यही गुण सीखेगा, अर्थात् स्वच्छता की बड़ाई तो बहुत करेगा किन्तु स्वच्छ न रहेगा। बच्चे पर जो परिवार का प्रभाव पड़ता है वह आजन्म नहीं मिटता ; किसी न किसी अंश में जीवन के प्रत्येक कार्य में उसका आभास दिखाई देता है।

बच्चे की शारीरिक और मानसिक वृद्धि के लिये स्वच्छता बहुत आवश्यक है। न केवल बच्चे ही को स्वच्छ रखना आवश्यक है किन्तु सारे स्थान को जहां वह रहता है स्वच्छ रखना चाहिये। बच्चे स्वभावतः स्वच्छ नहीं होते।

उनको यह आदत सिखानी होती है। स्वच्छ रहना न केवल सभ्यता ही का चिन्ह है किन्तु अनेक रोगों की औषधि भी है। गन्दगी में सहस्रों रोगों के जीवाणु उपस्थित होते हैं जहां उनकी संख्या खूब बढ़ती है। यहीं से ये जीवाणु शरीर के अंगों में पहुँच कर रोग उत्पन्न करते हैं। स्वच्छ रहने से शरीर इन सब रोगों से बच जाता है। उत्तम प्रकार से स्नान कराने से न केवल देह का चर्म ही स्वच्छ होता है किन्तु मालिश भी होती है जिससे चर्म में अधिक रक्त आता है, चर्म मज़बूत होता है और रक्त के विषैले पदार्थ दूर हो जाते हैं।

स्वच्छ वायु की इससे भी अधिक आवश्यकता है। यदि वायु ठंढी हो तो कमरे के सब किवाड़ इत्यादि न बंद कर लेने चाहिएँ। बच्चों के लिये ऐसे स्थान जहां की उष्णता प्रत्येक समय समान रहती हो, उत्तम होते हैं। ऐसे स्थान जहां चौवीसों घंटे उष्णता ठीक एक ही सी रहे, मिलना तो कठिन है। इतना ध्यान रखना चाहिये कि उष्णता में अधिक परिवर्त्तन न हो। जहां दिन में बहुत गरमी और रात्रि को ठंढ होती है उन स्थानों में ठंढ लगने का अवसर बहुत होता है। इसी से वहां प्रायः सदा ज़ुकाम इत्यादि हुआ करते हैं। ऐसी जगहों पर प्रातः काल ठंढे जल से स्नान कराना लाभदायक है।

पर्वत की वायु हलकी होती है और उसमें जल का भाग बहुत कम होता है। उसकी उष्णता भी कम होती है। वह सब दूषित अंशों से मुक्त होती है; स्वच्छता में वह वैसी

ही होती है जैसी की समुद्र की वायु। बच्चों के लिये यह वायु विशेष कर बहुत लाभदायक होती है। इसका प्रभाव एक उत्तम पुष्टिकारक औषधि के समान होता है।

इसमें ओज़ोन का अधिक भाग रहता है। जिन बच्चों को खांसी या ज़ुकाम बहुत होता हो, अथवा जिनके परिवार में राजयक्ष्मा का रोग हो उनको अवश्य पर्वत ही पर रखना चाहिये। दुबले पतले रोगी बच्चे पर्वत पर रह कर हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं। बालावस्था में पर्वत से जितना लाभ होता है उतना दूसरे समय में नहीं होता।

नगर की अपेक्षा ग्राम की वायु अधिक स्वच्छ होती है। नगरों में फैक्टरी, मिलें, इत्यादि की चिमनियों से धुआँ निकल कर वायु को दूषित करता है। बहुत से ऐसे व्यापार होते हैं जैसे चमड़े को साफ करना, जिनसे दुर्गन्ध चारों ओर फैलती है। बड़े नगरों में मकान ऊँचे ऊँचे और एक दूसरे के इतने पास होते हैं कि वहां गृहों में शुद्ध वायु का प्रवेश कठिन होता है। इन सब बातों को देखते हुए बच्चों के लिये ग्राम्य जीवन बहुत उत्तम है। शुद्ध वायु नगर के सब दोषों से रहित होती है। रहने का स्थान दूसरे बड़े बड़े मकानों से आच्छादित नहीं होता जिससे निर्मल पवन का वहां पूरा संचार होता है। गगन मंडल नगर के दोषों से मुक्त होता है। प्रकृति के दृश्य देखने को मिलते हैं। बच्चे को घूमने या खेलने के लिये खुला हुआ स्थान मिलता है। वहां का जीवन बहुत ही साधा-

रण और स्वाभाविक होता है। कृत्रिम आडंबर बहुत कम होते हैं। बच्चा प्राकृतिक जीवन से जितना लाभ उठा सकता है उतना कृत्रिम से नहीं।

बड़े बड़े नगरों में, जैसे कलकत्ता, या बम्बई, रहने का स्थान कठिनता से मिलता है। जो लोग नीचे के खंडों में रहने वाले हैं उनके बच्चों को सूर्य्य के दर्शन किये बिना दिन निकल जाते हैं। खुले हुए स्थानों में जो केवल पार्क ही होते हैं, घूमने का सबों को सौभाग्य नहीं मिलता। छोटे छोटे अँधेरे कमरों ही में चौबीसों घंटे बिताने पड़ते हैं। ऐसे स्थानों की अपेक्षा ग्रामों के मकान कहीं उत्तम हैं। यद्यपि उनमें बनाव नहीं होता और न नगरों के बड़े मकानों की भांति वे सजे होते हैं किन्तु उनमें जीवन की सब आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं। शुद्ध वायु और प्रकाश जो बड़े नगरों में इतने महंगे होते हैं वहां बहुत सस्ते मिलते हैं। गरीब और अमीर के लिये एक ही दामों में मिल सकते हैं। बच्चे पर गन्दगी, दूषित वायु-मंडल और समाज के व्यवहारों से या दूसरे कारणों से नगर में जो प्रभाव पड़ते हैं, ग्रामों में वह उनसे मुक्त रहता है। रिकटेस पांडु रोग या भोजन सम्बन्धी अन्य रोग जो नगरों में बच्चों को बहुधा हो जाते हैं उनसे ग्राम के बच्चे बचे रहते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि शिक्षा के साथ ही व्यायाम की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। आज्ञाकारी होने और

स्वार्थ-त्याग की शिक्षा देने का उपाय खेल से उत्तम कोई नहीं है। फुटबाल, हौकी इत्यादि के खेल से सब से अधिक यह लाभ होता है कि बालक इन गुणों को सीखते हैं। कई लड़कों को साथ में दौड़ करवाना या दूसरे ऐसे खेल जिनमें लड़के एक दूसरे से आगे निकलने का उद्योग करें, उत्तम हैं। किन्तु जो दुर्बल लड़के हैं उनको ऐसे व्यायाम न करने देना चाहिये। उनके लिये हलका परिश्रम जैसे टहलना, तैरने का कुछ अभ्यास करना उचित है।

व्यायाम करना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। खुली हुई वायु में जो परिश्रम किया जाता है जैसे जमनास्टिक के खेल फुटबाल इत्यादि, वह उत्तम है। कमरे के भीतर भी बहुत प्रकार के व्यायाम किये जाते हैं। व्यायाम करते समय कमरे के सब किवाड़ खोल देने चाहियें जिससे शुद्ध वायु भीतर आ सके। व्यायाम आरम्भ करने से पूर्व कमरे की वायु बदल देनी चाहिये, अर्थात् कुछ समय पूर्व कमरे को खोल देना चाहिये, नहीं तो ठंढ लगने का भय रहता है।